ISBN-13-978-81-923353-4-6

स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी शम्भुचन्द्र
नान्दीस्मृति-व्याख्यान

संस्कृत एवं भारतीयविद्या विभाग
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी,
पाटण.

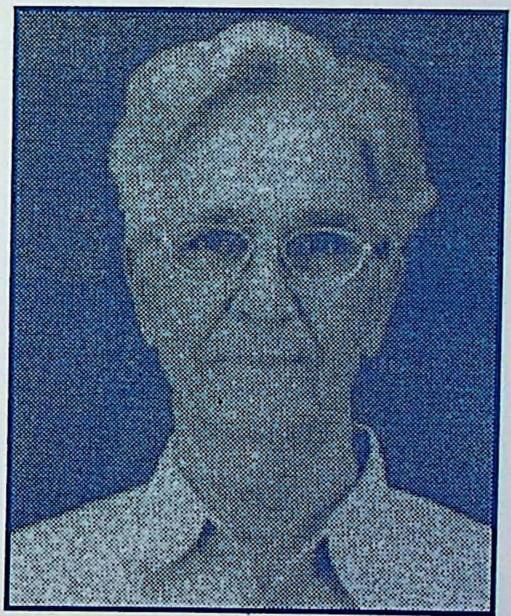

: व्याख्यान के प्रस्तोता :

प्रॉफेसर वसन्तकुमार म. भट्ट
पूर्व-निदेशक, भाषा साहित्य भवन,
गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद

: प्रायोजक :

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण.

(दिनाङ्कः ५-७ मार्च, २०१६)

ISBN-13-978-81-923353-4-6

स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी शम्भुचन्द्र नान्दीस्मृति-व्याख्यान

संस्कृत एवं भारतीयविद्या विभाग
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी,
पाटण.

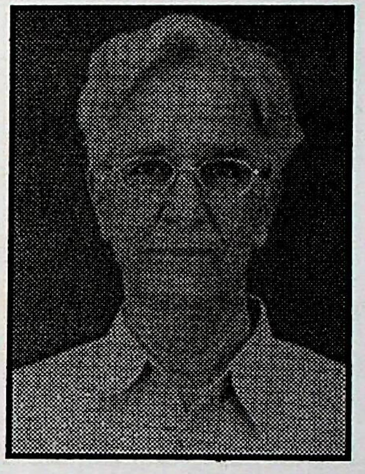

व्याख्यान के प्रस्तोता :
प्रॉफेसर वसन्तकुमार म. भट्ट
पूर्व-निदेशक, भाषा साहित्य भवन,
गुजरात युनिवर्सिटी,
अहमदावाद

प्रायोजक :
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण.
(दिनाङ्कः ५-७ मार्च, २०१६)

प्रास्ताविक

संस्कृत-जगत् में विद्वानों की प्रथम-पङ्क्ति में विराजमान गुजरात राज्य के यशस्वी विद्यापुरुष प्रॉ. श्री तपस्वी नान्दी जी अलङ्कार एवं नाट्यशास्त्र के आरूढ विद्वान् थे । न केवल गुजरात, वे सारे भारतवर्ष में अपनी विद्वत्ता से सुविख्यात थे । डॉ. नान्दी जी गुजरात युनिवर्सिटी के भाषा-साहित्य भवन के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे । अनेक छात्र-छात्राओं के दिल में अलङ्कारशास्त्र की चाहत जगानेवाले प्रॉ. नान्दीजी विरल प्राध्यापक थे । वे श्री रसिकलाल परीख, प्रॉ. आर. बी. आठवळे एवं डॉ. वी. एम. कुलकर्णी जी जैसी गुरुशिखित्रयी के शिष्यरत्नों में से एक थे । एवमेव, प्रॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी के परम सखा थे ।। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली ने उनको शास्त्रचूडामणि के रूप में 1994 में घोषित किये थे । यु. जी. सी., दिल्ली के द्वारा 1995 में उनको "प्रॉफेसर एमेरिटस" के पद से विभूषित किये गये थे । तथा भारत देश के महामहिम राष्ट्रपति के द्वारा उनको "सर्टीफ़िकेट ओफ ऑनर" (ऑगस्ट-1990) से सम्मानित किये गये थे । गुजरात के संतशिरोमणि पूज्य मोरारि बापु ने भी(2005 में) उनको "विद्या-वाचस्पति" की उपाधि प्रदान की थी ।।

प्रॉ. नान्दीजी के द्वारा लिखे गये एवं सम्पादित किये हुए ग्रन्थों की सूचि बहुत लम्बी है । उनमें से कुछ का नामसंकीर्तन करने से ही उनकी अध्ययन-शीलता एवं गभीर पाण्डित्य का परिचय मिल जायेगा । उन्होंने भरत मुनि का नाट्यशास्त्र (अभिनव-भारती के साथ), ध्वन्यालोक (लोचन के साथ) आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन एवं गुजराती भाषा में अनुवाद किये हैं । संस्कृत नाटकों का परिचय, भारतीय साहित्यशास्त्र की विचार परम्पराएँ, भारतीय नाट्यशास्त्र की विचार-परम्पराएँ एवं सहृदयालोक (Thought currents in Indian Literary Criticism), तथा काव्यप्रकाश के उपर गणरत्नगणि की सारदीपिका टीका का पाठसम्पादन एवं रघुवंश पर जीनसमुद्र गणि की टीका का पाठसम्पादन आदि अनेक ग्रन्थों की विशाल श्रेणी उनकी विद्वत्ता का चिर काल तक परिचय देती रहेगी ।।

प्रॉफेसर श्री नान्दी जी मूलतः उत्तर गुंजरात के पाटण के ही निवासी रहे है । इस कारण से वे हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण के संस्कृत विभाग से भी सब से पहले जुड़े हुए विद्वान् है । ई. स. 1986 में इस युनिवर्सिटी की स्थापना होते ही, 1989 में गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद से सेवा-निवृत्त होकर वे यहाँ आये । उत्तर गुजरात युनि. के तत्कालिक अधिकारी वर्ग की विज्ञप्ति पर उन्होंने उत्तर गुजरात युनि. के संस्कृत विभाग का 1992 में बीजारोपण किया था । इस युनिवर्सिटी के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग का आरम्भ पहले तो श्री पी. जी. कोटावाला आर्ट्स कॉलेज, पाटण में जब शूरु हुआ था, तब वे उनके

आद्यस्थापक अध्यक्ष थे । उस समय के निवासकाल में श्री सनतकुमार बी. जोशी ने उनके मार्गदर्शन में पण्डितप्रवर श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी (काशी) के द्वारा प्रणीत अभिनव काव्यालंकार-कारिका उपर सफल शोध-कार्य किया । उस समय उन्होंने कालिदास के नाटकों पर एक राष्ट्रिय परिसंवाद का भी आयोजन पाटण में करवाया था । तथा ऑल इन्डिया ओरिएन्टल कॉन्फरन्सीस के कईं अधिवेशनों में उन्होंने अलङ्कारशास्त्र के विविध ग्रन्थों में उद्धृत हुए कालिदास के पद्यों में जिन पाठान्तरों का सन्दर्भ मिलते है, उन सब को लेंकर उन्हों ने शोधपत्रों को प्रस्तुत भी किये थे । इसी तरह से 2003, मार्च में जब इस युनिवर्सिटी के नाम के आगे आचार्य हेमचन्द्र जी नाम जोडा गया, तब युनिवर्सिटी के द्वारा संशोधन-ग्रन्थों के प्रकाशन की श्रेणी भी तत्कालिक कुलपतिश्री प्रो. डो. बी. ए. प्रजापति जी ने शूरु करवाई थी । उस शोध-प्रकाशन के प्रथम पुष्प के रूप में भी डॉ. तपस्वी नान्दी जी को बिनती की गई । इसके अनुसन्धान में डॉ. तपस्वी नान्दी जी के द्वारा सम्पादित एवं अंग्रेजी में अनुदित आचार्य श्रीहेमचन्द्राचार्य जी का काव्यानुशासन (अलङ्कारचूडामणि एवं विवेक के साथ) 2007 में प्रकाशित किया गया था । अब वे जब स्मृतिशेष रह गये है तब उनके परिवार की ओर से हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण में प्रतिवर्ष एक व्याख्यान का आयोजन करने के लिए एक लाख रूपिये की धनराशि दी गई है । (जिसका उ. गु. युनि. में 7-3-2015 तारीख की कारोबारी में ठराव क्रमांक – 74 से सहर्ष स्वीकार किया गया है ।) तदनुसार उनकी पावनकारी स्मृति में हम एक व्याख्यान परम्परा का इस वर्ष से आरम्भ कर रहे हैं । हमें हर्ष है कि उनके ही स्नेहभाजन शिष्य प्रॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट (निवृत्त निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी) "अभिज्ञानशकुन्तला की पञ्च रंगावृत्तियाँ" इस विषय पर प्रथम पुष्प समर्पित कर रहे हैं ।।

इस व्याख्यान के पूर्वार्ध में, अभिज्ञानशाकुन्तल की तथाकथित पञ्च वाचनाओं में जो जो रंगसूचनाएँ दी गई है, उनमें बहुशः परस्पर में विसंगतियाँ हैं । जिनका मूल मंचनवैविध्य ही हो सकता है ऐसा निरूपित किया है । तथा च, इस व्याख्यान के उत्तरार्ध में, रंगकर्मिओं के द्वारा इस नाटक के श्लोकसमूह में कैसी प्रक्षेप-संक्षेप की प्रवृत्तियाँ की गई है ? उसका तर्कपुरस्सर प्रतिपादन किया गया है ।। कालिदास के इस महान नाटक की पाठयात्रा का चित्र अब आधुनिक विद्वानों की चर्चा के लिए प्रकाशित है ।।

हमें पूरा विश्वास हैं कि प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी नान्दी जी की यह स्मृति-व्याख्यान माला आगामी वर्षों में भी चलती रहेगी और विद्वदाकाश में प्रॉफेसर नान्दी जी का नाम सदैव चमकता रहेगा, तथा नवोदित संस्कृतानुरागीओं को प्रेरणा प्रदान करता रहेगा ।।

।। प्रोफेसर डॉ. तपस्वी नान्दी स्मृति-व्याख्यान ।।

(प्रथम पुष्प - 2016)

आयोजक : संस्कृत एवं भारतीय विद्या-विभाग, हेमचन्द्र उत्तर गुजरात युनि., पाटण

।। अभिज्ञानशकुन्तला की पञ्च रंगावृत्तियाँ ।।

वसन्तकुमार म. भट्ट

पूर्वनिदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद –380 009

[1]

महाकवि कालिदास का "अभिज्ञानशाकुन्तल" शीर्षक से सुप्रसिद्ध नाटक न केवल संस्कृत वाङ्मय की अद्वितीय शोभा है, वह विश्वनाट्यसाहित्य का भी बहुमूल्य रत्न है । तथापि इस नाटक का मूल पाठ क्या रहा होगा ? यह विवाद का विषय है । क्योंकि (1) कवि का स्वहस्तलेख कालग्रस्त हो चुका है ।, (2) इस नाटक के मंचन की परम्परा करीब दो हजार वर्षों की लम्बी कालावधि में फैली हुई है । यह कृति "अभिनेय काव्य" होने के कारण विविध प्रदेश के रंगकर्मिओं के हाथों से उसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन, या कदाचित् जगह जगह पर कटौती करने की भी प्रवृत्ति निरन्तर होती रही है । एवमेव, (3) कवि के द्वाराइस नाटक का लिखित पाठ्यांश ब्राह्मी लिपि में लिखा गया था । लेकिन कालक्रम से जब उसी ब्राह्मीलिपि से अन्य प्रादेशिक लिपियों का भी विकास होने लगा तो वह ब्राह्मी लिपिवालेकविप्रणीत पाठ का कालान्तर में अलग अलग लिपियों मेंलिप्यन्तरण भी होने लगा । एवमेव, (4) वह लिप्यन्तरित पाठ भी वनस्पतिजन्य फलक (भूर्जपत्र, ताडपत्र, कागजादि) पर लिखने के कारण जल्दी से जीर्णशीर्ण होता था । अतः भारतीय प्रजा ने उसे अगली पीढी के पास पहुँचाने के लिए उसका बार बार प्रतिलिपिकरण भी किया है । ऐसे प्रतिलिपिकरण की भी लम्बी परम्परा रही है । जिसमें भी लहियाओं के अज्ञान, अनवधान से अशुद्धियाँ प्रविष्ट हुई है, या कदाचित् ज्ञानी लिपिकार होने के कारण उनकी कविंमन्यमान बुद्धि से परम्परागत पाठ में प्रक्षेप एवं परिवर्तनादि भी होते रहे हैं । अतः स्वाभाविक ही है कि दो हजार वर्ष पहले लिखा हुआ इस नाटक का पाठ आज बहुविध स्वरूप में ही प्रकाशित हुआ हो । सारांशतः इस नाटक का मूल पाठ इतनी लम्बी कालावधि में अशुद्धियाँ, प्रक्षेप एवं परिवर्तनों से बार बार आक्रान्त होता रहा है ।।

विद्वानों ने अद्यावधि लिपिभेद या प्रदेशभेद के आधार पर उसकी पाँच वाचनाओं की समीक्षित आवृत्तियाँ निकालने का प्रशंसनीय कार्य किया है । परन्तु उनमें से मौलिकता के नज़दीक हो, या अधिक श्रद्धेय हो ऐसा पाठ किस वाचना का होगा ? इस प्रश्न को यदि उठायेंगे तो "केशाकेशि युद्धम्" का अनुभव होने लगेगा । इस विवाद में एकमति लाना दुस्साध्य या असम्भव सा प्रतीत होता है ।। दूसरा विचार यह भी है कि सर्वसम्मत हो ऐसी कोई अधिकृत / समीक्षित आवृत्ति निकालने की चेष्टा करने से बहेतर तो यही है कि एक ही जिल्द में पाँचों वाचनाओं का पाठ प्रेक्षक या पाठक के हाथ में रखा जाय ! क्योंकि पाण्डुलिपियों में जो विभिन्न वाचनाओं का पाठ संचरित हुआ है वे हकीकत में तो विविध "रंगावृत्तिओं के पाठ"ही है ऐसा दिख रहा है !अतः पाँचों वाचनाओं में से किस एक वाचना का पाठ मौलिक हो सकता है ? इसके विवाद में न जा कर, इन पाँचों वाचनाओं के पाठों को(जिस अनुक्रम में उन का आविष्कार हुआ है, उसी क्रम से बारी बारी सब को) एक साथ उपलब्ध करवाया जाय तो वह अधिक उपयुक्त होगा ।।

अद्यावधि इस नाटक के पाठ के सन्दर्भ में दो तरह की विद्याकीय प्रवृत्तियाँ होती रही है । (क) पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठों को प्रदेशभेद से पाँच वाचनाओं में विभक्त करके उनका प्रकाशन हुआ है ।

जैसे कि, (1.) डो. श्री मोनियर विलियम्स ने देवनागरी वाचना का समीक्षित पाठ (1876)प्रकाशित किया। किन्तु कालान्तर में कुछ नवीन पाण्डुलिपियाँ मिलने पर दूसरे विद्वानों ने भी देवनागरी वाचना का पाठ पुनः पुनः सम्पादित किया है। तथा इसी वाचना के अलग अलग संस्करण भी बार बार होते रहे हैं। जिसमें प्रो. पी. एन. पाटणकर (इन्दौर, 1889) ने शुद्धतर देवनागरी वाचना का पाठ प्रस्तुत करने का दावा किया है, उसके बाद कोलकाता के श्रीशारदारंजन राय (1902), श्री एम. आर. काळे (1966), एवं काशी के मूर्धन्य पण्डित श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी (1976 एवं 1986) के नाम अग्रगण्य हैं। देवनागरी पाठ के सम्पादकों की इस पङ्क्ति में और भी नाम शामिल किये जा सकते हैं ।। (2.) डॉ. रिचार्ड पिशेल ने हार्वर्ड युनिवर्सिटी, अमरिका से 1889 में, बंगाली वाचना का समीक्षित पाठ तैयार किया है। एवं उसी तरह से 1980 में डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल ने भी पुनः एक बार बंगाली वाचना का ही पाठ सम्पादित किया। उन्हों ने उसी बंगाली पाठ को मौलिक एवं सर्वाधिक श्रद्धेय घोषित किया है[1]। (3.) श्रीरमानाथ झा ने दरभंगा से 1957 में मैथिली वाचना का समीक्षित पाठ प्रकाशित किया है। एवमेव, उसके साथ मैथिली पाठ पर उपलब्ध हो रही शंकर एवं नरहरि की दो टीकाएँ भी प्रकाशित की है[2]। तत्पश्चात् (4.) डॉ. एस. के. बेलवालकर जी (पूर्णे) के द्वारा सम्पादित अभिज्ञानशकुन्तल की काश्मीरी वाचना का पाठ डॉ. वी. राघवन् जी ने सन 1964 में केन्द्रिय साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली से प्रकाशित करवाया। किन्तु यह सच्ची काश्मीरी वाचना का पाठ नहीं है, तथा वह "समीक्षितावृत्ति का पाठ" कहने योग्य भी नहीं है[3]। अतः हमने शारदा लिपि में लिखी हुई पाँच पाण्डुलिपियों[4] (जिसमें से दो भूर्जपत्र पर लिखी हुई है) का विनियोग करके उस काश्मीरी वाचना का

---

[1]द्रष्टव्यः अभिज्ञानशकुंन्तलम्। सम्पादक – डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता, 1980

[2]अभिज्ञानशकुन्तलम् (शङ्कर-नरहरिकृतव्याख्याद्वयसमलङ्कृतम्), मैथिलपाठानुगम्।, सं. श्री रमानाथ झा, मिथिलासंस्कृत विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957

[3]डॉ. एस. के. बेलवालकर जी द्वारा सम्पादित काश्मीरी पाठ, जो वी. राघवन् जी ने साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली से 1965 में प्रकाशित किया है, उसमें कहीं पर भी शारदा पाण्डुलिपियों का स्थान-स्वरूप, या क्रमांकादि की जानकारियाँ नहीं दी गई है। एवमेव, उसमें कहीं पर भी एक भी पाठभेदादि का निर्देश पादटिप्पणी में दिया नहीं है। अतः उसको हम "समीक्षित आवृत्ति" का गौरव नहीं दे सकते। तथा च, हमारे परीक्षण में ऐसा भी आया है कि काश्मीरी (शारदा) पाठ के नाम पर उसमें बंगाली या देवनागरी जैसि वाचनाओं का स्वीकार भी कर लिया गया है। अर्थात् वह भी इकलेक्टीक प्रिन्सीपल्स पर बनाई गई आवृत्ति ही है ।।

[4]शारदा लिपि में लिखी गई पाँच पाण्डुलिपियों का हमने परीक्षण किया है :-- (1) भूर्जपत्र पर लिखी गई प्राचीनतम एवं साद्यन्त पाण्डुलिपि, जिसको ब्युल्हर ने 1875-76 में काश्मीर से खरीदी थी, और जिसको 192 क्रमांक दिया था। यह औरंगझेब के समय में (ई. स. 1630) लिखी गई थी और वह भाण्डारकर ओरि. रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में सुरक्षित है। (2) ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी की बोडेलियन लाईब्रेरी से प्राप्त की गई 1247 क्रमांक की शारदा पाण्डुलिपि, (3) ऑक्सफर्ड युनि. की 159 क्रमांक की तीसरी शारदा पाण्डुलिपि, (जिसमें कुछ अंश अधुरा है), (4) ऑक्सफर्ड युनि. की 87 क्रमांक की शारदा पाण्डुलिपि, जिसको स्टेन कलेक्शन में ताडपत्र के रूप में घोषित की गई है। यद्यपि उसमें केवल षष्ठांक के बीच में से आरम्भ करके सप्तम अंक तक का अपूर्णांश ही मिलता है। तथा (5) श्रीनगर युनिवर्सिटी केम्पस में आई हुई आलम इकबाल गवर्मेन्ट लाईब्रेरी में से प्राप्त की गई 1435 क्रमांक की शारदा पाण्डुलिपि।

समीक्षित पाठ 2015 में तैयार किया है। (5.) दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठ अद्यावधि सही अर्थ में निकला ही नहीं है। किन्तु आन्ध्र प्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद का अभिज्ञानशाकुन्तल, जो काटयवेम की कुमारगिरिराजीया टीका के साथ 1987 में प्रकाशित हुआ है, उसको हम दाक्षिणात्य वाचना का पाठ कह सकते है ।। इस तरह अद्यावधि इस नाटक की पाँच वाचनाओं के पाठों का प्रकाशन करवाने का कार्य हुआ है[5] ।।

(ख) उन वाचनाओं में से किस एक के पाठ को सर्वाधिक प्रमाणिक या श्रद्धेय माना जाय ? इसका परामर्श भी अंशतः चलता रहा है। जैसे कि, 1. डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल के अभिमत से बंगाली वाचना का पाठ ही मौलिकता का दावा कर सकता है ।2. तथा प्रो. पी. एन. पाटणकर, श्रीशारदा रंजन राय तथा डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी जैसे अनेक विद्वानों के मत से केवल देवनागरी वाचना का पाठ ही सर्वाधिक श्रद्धेय एवं मौलिक कहने योग्य है। 3. डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के कुछ शोध-आलेखों[6]से सूचित होता है कि वे काश्मीरी पाठ को मूलादर्श प्रति का पाठ मानने के पक्षधर थे ।4. कदाचित् ऐसा भी विचार किया गया है कि सभी वाचनाओं के अनेकविध पाठान्तरों में से जो सब से अधिक नाट्यक्षम, काव्यसौन्दर्य से भरा एवं व्यंजनापूर्ण हो उसको चुन चुन कर, (याने सीलेक्टीव /इक्लेक्टीक प्रिन्सीपल पर पाठचयन करके) एक पाठ सम्पादित किया जाना चाहिए[7]। अथवा, 5. इसी संदोहन-पद्धति से,बहुविध पाठान्तरों में से जिस पाठान्तर को बहुसंख्यक पाण्डुलिपियों का (या सर्वाधिक वाचनाओं के पाठ का) समर्थन मिलता हो ऐसे संदोहित किये गये पाठ को अधिकृत या मान्य पाठ के रूप में स्थापित करना चाहिए ।।

किन्तु विविध वाचनाओं के बहुविध पाठान्तरों में से "अमुक पाठान्तर ही सही है, या मौलिक हो सकता है, और दूसरे अन्य सभी पाठान्तर अग्राह्य है,कल्पित है, या गलत है"इत्यादि प्रकार के अभिप्रायों को प्रकट नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनमेंआत्मलक्षिता एवं दुराग्रह प्रतिबिम्बित होता ही है, जिसके कारण वैसे सम्पादन सर्वसम्मत नहीं हो सकते हैं। पाठान्तरों की मौलिकता का विचार करना तभी समीचीन लगता है कि जब किसी एक-कर्तृक ग्रन्थ का संचरणकेवल लिखित रूप से ही हुआ हो। नाटक जैसी अभिनेय कृति के पाठसंचरण में केवल प्रतिलिपि-करण का रास्ता ही नहीं होता है। उसमें तो मंचन का, और वह भी दो हजार वर्षों के कालावधि में फैला हुआ, सन्दर्भ भी जुडा होता है। मतलब कि नाट्यकृतियाँ तोकेवल कहने के लिए प्रथम क्षण में ही एक-कर्तृक रचना होती है। अन्यथा कविओं के द्वारा नाट्यरचना हो जाने के बाद वे जैसे ही रंगकर्मिओं के हाथ में पडती हैं, वे निश्चित रूप से अनेक-कर्तृक रचना हो जाती हैं। अतः उसमें उपलब्ध हो रहे पाठभेदों का अवतार तो बहुधाविविध देशकाल के रंगकर्मिओं के द्वारा ही हो सकता है, यह

---

[5]उडिया लिपि में लिखी हुई पाठपरम्परा का अभ्यास नहीं हो पाया है। क्योंकि उस प्रान्त की पाण्डुलिपियाँ ही हमें नहीं मिल रही है। अतः कोई षष्ठ वाचना है या नहीं ? यह कहना बहुत मुश्कील है।

[6]डॉ. बेलवालकर जी के शोध-आलेखः- (1) निसर्ग कन्या शकुन्तला। कालिदास ग्रन्थावली, सं. सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ, 1963, (2) Shringaric Eloboration in Shakuntal-Act-3, C. R. Lanman vol. Harvard University, pp. 187-192, in1923, (3) Asia Major, Leipzing, -2, (4) Our Heritage, vol.-9, pt.-2, July-1961, (5) Sir Ashutosh Mukerjee vil. -3, Calcutta, 1925.

[7]Text of Shakuntala, B. K. Thakore, Bombay, 1922 (Presented in the First All India Oriental Conference, at Poona, 1912)प्रॉफे. बलवन्तराय ठाकोर गुजरात के लब्धप्रतिष्ठ सॉनेटकार कवि एवं फर्ग्युसन कॉलेज, पूर्णे में इतिहास के प्राध्यापकश्री थे। एकाधिक स्वरूप के अभिज्ञानशाकुन्तल को देख कर, उसकी पाठालोचना करनी अनिवार्य है ऐसा दुनियाभर में कहनेवाले ये पहले विद्वान् थे।

बात हम कैसे भूल सकते हैं?। इसी विचारधारा को लेकर एक ऐसा संस्करण सोचना चाहिए कि जिसमेंपाँचों वाचनाएँ एक साथ में उपलब्ध हो । ऐसा होने से अभ्यासी वर्ग को प्रत्येक वाचना के पाठ में कहाँ कहाँ, क्या क्या रंगलक्षीय विशेषताएँ मिल रही है ?उसीका अपनी दृष्टिसे भी तुलनात्मक अभ्यास करने का मौका मिल सकता है ।।

नाट्यकृतियाँ मंचनलक्षीहोती है, अतः पाठसंचरण के प्रथम चरण में ही उसमें रंगकर्मियों के द्वारा पाठ-परिवर्तन होना अवश्यंभावि है । जिसमें विशेष रूप से किसी एक दृश्य को आगे-पीछे कर देने की प्रवृत्ति भी शामिल होती है और नवीन प्रवेशकादि का संनिवेश भी होता है ।। संस्कृत नाटकों में गद्य संवादों के साथ गेय श्लोकों का भी उपयोग किया जाता है । इस लिए दूसरे चरण पर, प्रतिलिपिकरण के दौरान पाठशोधकों के द्वाराकाव्यशास्त्रीय पक्ष को लेकर कुछ शाब्दिक पाठ-परिवर्तन किये जाते हैं । तथा कदाचित् कुछ नवीन श्लोकों का प्रक्षेपादि भी हुआ करते हैं ।तृतीय चरण पर, वही नाटक यदि अल्प समयावधि में रंगमंच पर प्रस्तुत करने की आवश्यकता रहती है तो सूत्रधार लोग उसके मूल पाठ में अपनी मति एवं रुचि के अनुसार संक्षेप भी कर लेते हैं । (अतः आज पाण्डुलिपियों में मिल रहे पाठ में सर्वथा सर्वांश में मौलिकता सुरक्षित रही होगी ऐसा मानना मुश्कील है ।) ।। मूल कवि के द्वारा नाटक में स्त्रीपात्रों की जो उक्तियाँ प्राकृत भाषा में लिखी होती है उनमें भी, मंचन के किसी भी मौके पर, तत्-तत् देशीय, एवं तत् तत्कालिक प्राकृतानुसारी (अर्थात् शौरसेनी से महाराष्ट्री प्राकृत, तथा मागधी से महाराष्ट्री प्राकृत में) ध्वन्यात्मक पाठपरिवर्तन भी किये जाते हैं । याने संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा का कलेवर भी निरन्तर बदलता ही रहता है ।।

अब, उपर्युक्त कारणों से जो वाचना-भेद आकारित होते रहते हैं, उसका कालानुक्रम में, एक ही ग्रन्थ में युगपत् रूप से, चित्र मिल सके इस लिए "पञ्च स्तरीय शाकुन्तल" बनाना चाहिए । वही आज के समय की मांग है ।। "पञ्च स्तरीय शाकुन्तल" शब्द से हमें यह अभिप्रेत है कि सब से पहले इस नाटक के विभिन्न पाठभेदों का ऐतिहासिक दृष्टि से तुलनात्मक अभ्यास किया जाना चाहिए । जिसके फल स्वरूप इस नाटक की पाठयात्रा का चित्र स्पष्ट रूप से सभी देख सकेंगे । इस विचार से प्रेरित होकर हमने उपलब्ध हो रही पाँचों वाचनाओं का पहले पौर्वापर्य ढूँढ निकाला है[8] । जिसके आधार पर हम कह सकते है कि उन पाँचों में से काश्मीरी वाचना ही प्राचीनतम वाचना है । तदनन्तर, द्वितीय क्रम में मैथिली वाचना बनाई गई है । तृतीय क्रमांक पर बंगाली वाचना का पाठ खड़ा है । चौथे एवं पाँचवें क्रमांक पर अनुक्रम से दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना का पाठ आविष्कृत हुआ है ।।

[2]

वर्तमान समय में **इस नाटक की पाँचवाचनाएँ** प्रकाशित हुई है, उनका प्राथमिक परिचय करना आवश्यक है :- इन पाँचों वाचनाओं में इस नाटक का जो पाठ प्रवाहित हुआ है वह मुख्य रूप से द्विविध है । (क) बृहत्पाठ । एवं (2) लघुपाठ । काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली ये तीन वाचनाओं में बृहत्पाठ संचरित हुआ है । तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं में लघुपाठ संचरित होकर हम तक पहुँचा है । प्रथम काश्मीरी वाचना के पाठ को धारण करनेवाली शारदा पाण्डुलिपियों में इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञान-शकुन्तला"दिया गया है । द्वितीय एवं तृतीय बंगाली वाचनाओं में "अभिज्ञान-शकुन्तलम्" शीर्षक रखा गया

---

[8]हमारा "अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की आनुक्रमिकता" शीर्षकवाला शोध-आलेखद्रष्टव्य : नाट्यम् । (अंक – 76), सं. श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, मार्च-दिसम्बर 1914, पृ. 26 से 54 ।

है। इन तीनों बृहत्पाठ वाली वाचनाओं का विशेष अध्ययन करने से यह भी मालूम होता है कि काश्मीरी वाचना में जो बृहत्पाठ था, वह क्रमशः मैथिली वाचना में बृहत्तर बनता है। और वही पाठ आगे चल कर बंगाली वाचना में बृहत्तम वन गया है।। जिन दोनों वाचनाओं में इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है, वे है :-- दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं का पाठ। इन दोनों में इस नाटक का शीर्षकमें "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" रखा गया है।तथा दाक्षिणात्य वाचना की अपेक्षा से देवनागरी वाचना का पाठ उत्तरवर्ती काल का है एवं ज्यादा संक्षिप्ततर भी है, और विशेष रूप से परिष्कृत भी क़िया गया है। यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि लघुपाठ को प्रसारित करनेवाली इन वाचनाओं के संग्रथन में उनके पाठशोधकों ने कदाचित् काश्मीरी वाचना से अमुक पाठान्तर को चुना है तो कदाचित् मैथिली या बंगाली वाचना के पाठान्तर का स्वीकार किया है। मतलब कि इन दोनों वाचनाओं में "संमिश्रित् किया गया पाठ" चल रहा है[9]।।

[3]

इन **तीन तरह् के शीर्षकों** से ऐसा सूचित होता है कि विविध कालखण्डों मेंइसी एक ही नाटक की परख बदलती रही है। जैसे कि, किसीने उसे अभिज्ञानशकुन्तला कहा है, तो दूसरे ने उसे अभिज्ञानशकुन्तलम् नाम दिया है, तीसरे ने उसे अभिज्ञानशाकुन्तल नाम दे दिया है। इन तीन तरह् के शीर्षकों में से कौन सा शीर्षक कवि कालिदास के द्वारा लिखा गया होगा ? या इन तीनों में से कौन सा शीर्षक सब से अधिक समीचीन है ? ऐसी चर्चाएँ करके, सर्वसम्मत हो सके ऐसे अन्तिम निर्णय पर पहुँचना कथमपि सम्भव नहीं है। क्योंकि जब मूल कवि का स्वहस्तलेख मिलने की कोई शक्यता ही नहीं है, तब हर कोई भावक अपनी अपनी राय देता रहेगा। तीन तीन तरह के शीर्षकों की प्राप्ति भी इसी लिए ही हो रही है !मतलब कि एक ही नाटक की कथावस्तु का आकलन अलग अलग कालखण्ड में अलग अलग स्वरूप में होता रहा है। जैसे कि, काश्मीरी पाठपरम्परा में (नाटक के आरम्भ से लेक़र अन्त तक,) अभिज्ञानपूर्विका शकुन्तला जिसमें निरूपित की गई है ऐसा यह नाटक है, ऐसी सोच से प्रेरित होकर यह नाम दिया गया होगा।। मैथिली एवं बंगाली परम्परा में"अभिज्ञानशकुन्तलम्"ऐसे शीर्षक के अनुसार"(दुर्वासा का शाप मिलने के बाद) अंगुठी रूप अभिज्ञान से संस्मृता शकुन्तला जिसमें निरूपित हुई है ऐसा यह नाटक है" ऐसी सोच दिख रही है।यहाँ अभिज्ञान के रूप में जो अंगुठी है, उसको महत्त्व दिया गया है। तो लघुपाठवाली अन्तिम दोनों पाठपरम्पराओं के अनुसार, "इस नाटक में केवल शकुन्तला की पहचान की ही समस्या नहीं है, उसमें तो नायिका शकुन्तला के साथ साथ शाकुन्तल (शकुन्तला के पुत्र) के अभिज्ञान को भी सप्तम अंक में निरूपित किया गया है" ऐसा तात्पर्यार्थ सोचा गया होगा। इन तीन गर्भित आशयों को व्यक्त करने के लिए इन तीन तरह् के पाठान्तरों ने जन्म लिया होगा।।

[4]

अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की **पाँच वाचनाओं** के नामोल्लेख में प्रदेशभेद से वाचनाभेद किया गया होगा ऐसा प्रतीत हो रहा है। किन्तु इस नाटक के पाठभेदों को इयत्ता की दृष्टि से देखा जाय तो इसका द्विधा विभाजन हो सकता है। जैसे कि, बृहत्पाठ एवं लघुपाठं। किन्तु वाचनाभेद करने का यह तर्क भी ठीक नहीं है। क्योंकि जहाँ तक गुणात्मकता की दृष्टि से वाचन-भेद का निर्धारण करने का सवाल है, इस नाटक की दो

---

[9]इस विषय का निरूपण"अभिज्ञानशाकुन्तल की दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं की पाठालोचना।" इस शीर्षकवाले शोध-आलेख में किया है। इसका प्रकाशन भी नाट्यम् –2015 के अंक में होनेवाला है।।

ही वाचना कहनी होगीः- 1. शारदा वाचना, और 2. शारदेतर वाचना । प्रथम शारदा वाचना में, (इस प्रणयप्रधान कथा को प्रस्तुत करनेवाले नाटक में,) एक मात्र दुर्वासा के शाप को ही अन्तराय के रूप में रखा गया है । किन्तु शारदेतर वाचना में शाप के साथ साथ पूर्वपरिणीताओं की ओर से खडे होनेवाले अन्तराय की परछाईयाँ भी दाखिल की गई है । यही भेदक तत्त्व इस नाटक की अपूर्वता एवं नवीनता को निश्चित करनेवाला प्रधान तत्त्व है । एवमेव, यही एक बिन्दु को अग्रेसर करके इन पाठभेदों को वाचनाओं में निबद्ध करना चाहिए ।। यहाँ जो शारदेतर वाचना है उसकी पाठपरम्परा का दो प्रवाहों में (बृहत्पाठपरम्परा एवं लघुपाठ परम्परा में) संचरण हुआ है ।।इस दृष्टि से **इस नाटक की पाठपरम्पराओं का वंशवृक्ष** निम्नोक्त रूप में आकारित हो रहा है :--

ई. स. पूर्व प्रथम शती में कवि कालिदास का स्वहस्तलेख (कालग्रस्त)

↓

मूलादर्श प्रति का पाठ (अनुमानित प्रथम प्रति)

↓

↓

अज्ञात / विलुप्त पाण्डुलिपियाँ

↓

शारदा लिपि की पूर्वावस्था में निबद्ध काश्मीरी वाचना

↓

1. दूसरी-तीसरी शती का काश्मीरी पाठ

↓

↙ ↘

काश्मीरी शारदा पाठ — 2.मैथिली (चौथी शती) का बृहत्तर पाठ (चन्द्रगुप्त-2, = साहसांक, विक्रमादित्य के समय में)

↙ ↘

वर्तमान में उपलब्ध होनेवाली शारदा वाचना — 3. बंगाली का बृहत्तम पाठ

↘ ↙

4. दाक्षिणात्य वाचना का संक्षिप्त एवं संमिश्रित पाठ

↓

5. देवनागरी का संक्षिप्ततर एवं पुनः संमिश्रित किया गया पाठ (प्रायः चौदहवीं शती का पाठ)

[यही देवनागरी वाचना का पाठ आज पठन-पाठन में सर्वत्र प्रचलित है]

इस काल्पनिक या अनुमानित वंशवृक्ष को देख कर हमें समझ में आयेगा कि " क्व आसीत् मूलपाठः, क्व चाधुना स समापतितः पाठः ?।" गंगोत्री से समारब्ध गङ्गाजी का परिशुद्ध जल कालचक्र के साथआगे बढता हुआ सदैव प्रदूषित होता रहता है, वैसी ही इस नाटक का मूल पाठ कैसे कैसे परिवर्तनों के साथ निरंतर बदलता रहा है, और किस स्वरूप में आज हम तक पहुँचा है – यही विचारणीय बिन्दु है ।।

प्रचलित पाठ में संक्षेपीकरण के पदचिह्न:वर्तमान भारत में कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का जो पाठ पठन-पाठन में सर्वत्र स्वीकृत हुआ है वह तो देवनागरी वाचना का ही पाठ है। लेकिन उस के तीसरे अंक में कुछ स्थान ऐसे हैं कि जिसको देख कर, तुरंत मालूम हो जाता है कि इस पाठ में तो संक्षेप हुआ ही है[10]। इस विषय के दो पदचिह्न नमुने के तौर पर देखना आवश्यक है:—(क) डॉ. एस के. वेलवालकर जी ने, देवनागरी वाचना के तृतीयाङ्क में आयी हुई समयसूचक रंगसूचनाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। जैसे कि, मृगपोतक को उनकी माँ से संयोजित करवाने का बहाना बना कर दोनों सहेलियाँ रंगभूमि से बाहर चली जाती है। अब रंगभूमि पर केवल नायक-नायिका ही हैं, तब निम्नोक्त संवाद-शृङ्खला केवल छः वाक्यों में ही उपलब्ध होती है:--

राजा– सुन्दरि, अनिर्वाणो दिवसः। इयञ्च ते शरीरावस्था,

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।

कथमातपे गमिष्यसि परिवाधा[कोमलैर/पेलवै]रङ्गैः ।। (बलादेनां निवर्तयति)

शकु. – पौरव रक्षाविनयम्, मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि

राजा– भीरु, अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्न दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः।

अपि च, गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।

श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ।। 20 ।।

शकु.– मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।

राजा– भवतु, मोक्ष्यामि।

शकु.– कदा।

राजा– अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।

अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि, गृह्यते रसोऽस्य ।। 21 ।।

नेपथ्ये– चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी ।।

इसमें कहा गया है कि, दिवस अभी पूरा नहीं हुआ है और लताकुञ्ज से बाहर आतप है।मतलब कि नायक-नायिका का एकान्त मिलन मध्याह्न के समय में हो रहा है ऐसा प्रकट शब्दों में कहा गया है। उसके बाद, छोटे छोटे केवल छह गद्य वाक्यों का संवाद आता है, और तुरंत उसके पीछे नेपथ्योक्ति से कहा जाता है कि रात्रि का आगमन हो गया है, हे चकवी ! तुम अपने प्रियतम से बिदा लेलो ।। इस तरह से मध्याह्न और रात्रि के बीच आयी इन छह उक्तियों का संवाद ही इस बात का द्योतक बनता है कि इन दो समयावधि के बीच में कोई दृश्यावली रही होगी, परन्तु उस लम्बी दृश्यावली को संक्षिप्त करने के लिए किसी अज्ञात पाठशोधक ने बीच में से हटा दी है ।। उसके प्रतिपक्ष में, बृहत्पाठ के पाठ्यांश में मध्याह्न, सायंकाल[11] और रजनी – इन तीनों समय-सूचक शब्दावली का प्रयोग सुरक्षित रहा है। देवनागरी पाठ में आयी हुई समय-दर्शक सूचनाओं की विसंगति ही उच्च स्तरीय पाठालोचना की दृष्टि से हमारे लिएसंक्षेप-साधक प्रमाण बनती

---

[10]द्रष्टव्यः- नाट्यम्। (अंक-71 से 74) सं. श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, दिसम्बर, 2012, पृ. 26 से 57

[11]राजा - सुन्दरि, त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे। दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः ।। 3-29

है, जो कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण होने से कोई भी विचारवान् व्यक्ति उसको मान्य करेगा ही । मूल पाठ में कटौती होने का यह सटीक प्रमाण देनेवाले विद्वान् डॉ. एस. के बेलवालकर जी थे ।।

(ख) डॉ. बेलवालकर जी ने प्रशस्त किये मार्ग पर कुछ अधिक चिन्तन करने पर हमारे ध्यान में एक दूसरा बिन्दु आया है । जैसे कि, तृतीयाङ्क के आरम्भ में ही कहा गया है कि शकुन्तला प्रेमासक्त हुई है और वह अस्वस्थता का अनुभव कर रही है । दोनों सहेलियाँ विषादग्रस्त हैं और उसे पवन झल रही हैं । राजा शकुन्तला को देख कर सोचता है कि क्या यह आतपदोष हो सकता है, या फिर मेरा मन जैसा सोच रहा है ? यहाँ राजा "अथवा कृतं सन्देहेन ।" कह कर एक श्लोक में शकुन्तला का वर्णन करता है:—*स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलित-मृणालैकवलयं प्रियायाः साबाधं, किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।* इत्यादि ।। (3/6, यह श्लोक सभी वाचनाओं में स्वीकृत है ।) इसमें कहा गया है कि शकुन्तला ने हाथ में पहना हुआ जो एक मृणाल-वलय है, वह "शिथिल हुआ" है । नाटक में जिसका भी निर्देश किया जाता है वह साभिप्राय, सप्रयोजन ही होता है – इस गृहीत नियम को स्मरण-पथ में रखते हुए सोचेंगे तो, इस मृणाल-वलय से जुड़ा हुआ कोई प्रसंग तृतीयांक में होना अपेक्षित है । और जब हम इसी अङ्क में आगे चल कर उपान्त्य (3 /23) श्लोक पर पहुँचते हैं तो उसमें निम्नोक्त तीन चीजों का निर्देश मिलता है:—

तस्याः पुष्पमयीशरीरलुलिता शय्या शिलायामियं,
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणम् इत्यासज्यमानेक्षणो,
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ।।

शकुन्तला जिस पर लेटी थी (1) वह पुष्पमयी शय्या, (2) उसने अपने नाखूनों से लिखा मन्मथलेख, तथा (3) उसके हाथ से निकल गया, गिर गया बिसाभरण, अर्थात् मृणाल-वलय ! जिस मृणाल-वलय का निर्देश इस अङ्क के आरम्भ में आता है वही चीज अङ्क के अन्त भाग में भी उल्लिखित है । किन्तु इस देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठ में कहीं पर भी मृणाल-वलय से जुड़ा कोई प्रसंग मिलता ही नहीं है । इससे निःशङ्कतया स्पष्ट होता है कि दुःषन्त शकुन्तला के हाथ से गिरा मृणाल-वलय उसको दो बार पहनाता है ऐसा प्रसंग, जो बृहत्पाठ परम्परा की तीनों वाचनाओं में मिलता है, वह इन देवनागरी-दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठ में से हटाया गया है ।। देवनागरी और दाक्षिणात्य पाठ में संक्षेप किया गया है उसका यह दूसरा प्रकट पदचिह्न है। लेकिन दुर्भाग्यवशात्अद्यावधि किसी भी विद्वान् के ध्यान में यह बात आयी ही नहीं है ।।

जब भी किसी नाटक को अल्प समयावधि में प्रस्तुत करने के आशय से उसमें कुत्रचित् संक्षेप किया जाता है तब कहाँ से कटौती की जाय, और कैसे उस कटे हुए पाठ के साथ प्रकृत कथा का पुनः अनुसन्धान किया जाय ? यह भी समस्या होती है । क्योंकि कालिदास जैसे कविकुलगुरु की रचना में जो भी होगा वह निश्चित रूप से "पर्यायपरिवृत्त्यसह" के स्तरवाला ही होगा ।फिर संक्षेप हो सकेगा ही कैसे?यह शङ्का बिलकुल समीचीन है । लेकिन सूक्ष्मेक्षिका से देखने पर मालूम होता है कि महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से प्रेरित होकर (मैथिली पाठपरम्परा मेंप्रथम वार) किसी अज्ञात रसिक ने *गान्धर्वेण विवाहेन*0वाला श्लोक प्रक्षिप्त कर दिया । इसी श्लोक के आगमन से ही, जो सहज सुन्दर प्रेमप्रसंग मूल (बृहत्पाठ परम्परा) में था उसको हटादेना सम्भव हो गया । इसी प्रक्षिप्त श्लोक के सहारे ही नायक दुःषन्त एक मुग्ध आरण्यक कन्या को सद्यो विवाह के लिए उकसाने में सफल होता है, ऐसा दिखाना सरल हो जाता है ।।

अब प्रश्न होगा कि *गान्धर्वेण विवाहेन*0 । वाला श्लोक प्रक्षिप्त ही है ऐसा हम किस आधार पर कह रहे है ? तो इस को समझने के लिए, बृहत्पाठ के कथा-प्रवाह का पूरा सन्दर्भ बारीकी से देखना होगा । जैसा कि,

तृतीयांक में प्रियंवदा और अनुसूया मृगबाल को उनकी माता के पास पहुँचाने का बहाना बना कर लतामण्डप से दूर चली जाती है। अब रंगमंच पर दुःषन्त और शकुन्तला अकेले हैं। दुःषन्त सखीजनों की भूमिका पर खड़ा है। मध्याह्न का समय होने से वह शकुन्तला को नलिनीदल से आर्द्र वायु का संचार करने का इच्छुक है, और शकुन्तला कहे तो उसके चरणों का संवाहन करने को भी तैयार है ! किन्तु शकुन्तला माननीय व्यक्ति से ऐसी सेवा लेना उचित नहीं समझती है। अतः वहाँ से उठ कर चली जाती है। दुःषन्त उसके पीछे चल पड़ता है और उसका पल्लू पकड़ कर रोकने की चेष्टा करता है। शकुन्तला कहती है कि *–पौरव, रक्ष विनयम् । इतस्ततः ऋषयः संचरन्ति* ।। इस संवाद के बाद राजा की जो उक्ति है, उसकी मौलिकता संदेहास्पद हैः –

राजा– सुन्दरि, अलं गुरुजनाद् भयेन। न ते विदितधर्मा तत्रभवान् कण्वः खेदमुपयास्यति।

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योऽथ मुनिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः ।। 3 – 28 ।।

(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि। (शकुन्तलां हित्वा पुनस्तैरेव पदैः प्रतिनिवर्तते।)

शकुन्तला– (पदान्तरे प्रतिनिवृत्य साङ्गभङ्गम्) पोरव, अणिच्छापूरओ वि संभासणमेत्तएण परिचिदो अअं जणो ण विसुमरिदव्वो ।।

यहाँ, लतामण्डप से बाहर निकल कर शकुन्तला के पीछे दुष्यन्त भी चल पड़ता है, तबउसको सावधान करने के लिए शकुन्तला ने "यहाँ वहाँ ऋषिमुनि लोग घूम रहे होगें"ऐसा कहा है। इस सन्दर्भ में दुष्यन्त कहता है कि गुरुजनों से भय रखने की आवश्यकता नहीं है, कण्व भी (तुमको प्रेमासक्त या विवाहित जान कर) खेद का अनुभव नहीं करेंगे। अर्थात् तेरे पर नाराज़ नहीं होगें। दुष्यन्त यहाँ विशेष में यह भी कहता है कि गान्धर्व-विवाह से विवाहित हुई बहुत सी मुनिकन्यायें (या राजर्षियों की कन्याएँ) है, जो (बाद में) पिताओं के द्वारा अनुमोदित (अभिनन्दित) भी की गई हैं। इस श्लोक पर किसी विद्वान् ने नुकताचीनी शायद नहीं की है। लेकिन सम्भव है कि किसी साहित्यरसिक की दृष्टि में, दुष्यन्त ने यहाँ शकुन्तला को गान्धर्व-विवाह के लिये उकसाया है ऐसा भाव उठ सकता है। ऐसी संवित्ति मुखर हो कर सामने आये या न आये, लेकिन शकुन्तला जब कह रही है कि आसपास में ऋषि-मुनि घूम रहे होंगे, तब तो पुरुवंश के राजा से विनीत वर्ताव की ही अपेक्षा है। उससे विपरीत दुष्यन्त गुरुजनों से डर ने की कोई ज़रूरत नहीं है ऐसा समझाने का उपक्रम शुरु करे वह दुष्यन्त के धीरोदात्त चरित के अनुरूप नहीं है। अतः दुष्यन्त के मुख में रखा गया प्रथम वाक्य एवं "*गान्धर्वेण विवाहेन*"0 वाला श्लोक बीच में से हटाया जाय तो, जो रंगसूचना-पुरस्सर का अनुगामी वाक्य है *"(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि। (शकुन्तलां हित्वा पुनस्तैरेव पदैः प्रतिनिवर्तते।)"*, वह बिलकुल सही सिद्ध होता है। इसमें विचार-सातत्य भी है, और दुष्यन्त का लतामण्डप में वापस चला जाना भी शकुन्तला की उक्ति से सुसम्बद्ध है ।। महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में दुष्यन्त गान्धर्व-विवाह के लिए बहुत उतावला हो गया है। उस मूल कथा में सुधार के लिये उद्यत हुए महाकवि के लिए प्रेम का उदात्त चित्र खींचना मुनासिब है, तो उसको अपनी कलम से गान्धर्व-विवाह का प्रस्ताव करा कर किसी मुग्धा मुनिकन्या को उकसाने की ज़रूरत नहीं थी। इसे, अर्थात् *गान्धर्वेण विवाहेन0* वाले श्लोक को प्रक्षिप्त मान कर, हटा देने से दुःषन्त के उदात्त चरित की भी रक्षा होती है और शकुन्तला की उक्ति के साथ "*कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि।*" जैसा दुष्यन्त का प्रतिभाव भी सुसंगत ठहरता है ।। कहने का तात्पर्य यही है कि शकुन्तला जब लतामण्डप से बाहर चली जाती है, उसके बाद दुष्यन्त भी जब वहाँ से बाहर आ जाता है तब "यहाँ वहाँ ऋषिमुनि लोग घूम रहे होगें" ऐसी प्रिया शकुन्तला की चेतावनी को सुन

कर तुरंत ही,"(*दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि ।*"जैसी उक्ति का सन्धान ही मौलिक प्रतीत होता है ।।

यह श्लोक मैथिली से आरम्भ करके, बंगाली और देवनागरी एवं दाक्षिणात्य जैसी सभी वाचनाओं में संचरित हुआ है । किन्तु उपर्युक्त सन्दर्भ में वह प्रक्षिप्त प्रतीत हो रहा है, तो स्वाभाविक रूप से कोई भी पाठालोचक हमसे ऐसा प्रश्न पूछेगा ही " क्या एक भी पाण्डुलिपि का ऐसा साक्ष्य मिलता है कि जिसमें यह गान्धर्वेण विवाहेन0 वाला श्लोक न मिलता हो?" । तो इस प्रश्न का उत्तर हाँ-में है । भूर्जपत्र पर लिखी शारदा पाण्डुलिपि में, तथा ऑक्सफर्ड युनि. की बोडलीयन लाईब्रेरी से प्राप्त की गई पूर्वोक्त तीन शारदा पाण्डुलिपियों में *गान्धर्वेण विवाहेन0* वाला श्लोक नहीं है !! उसका न होना भी इसी बात को सर्वथा प्रमाणित करता है कि यह श्लोक प्रक्षिप्त ही है[12] । तथा इस श्लोक के "*ताः*" पद का अन्वय चतुर्थ-चरण में जाता है वह भी अनुष्टुप् की क्षति रूप है, जो भी कालिदास की रचना न होने का समर्थन करता है ।।

तीसरा ध्यातव्य बिन्दु यह है कि इस श्लोक के बाद, बृहत्पाठ की जो दृश्यावली प्रस्तुत होती है उसमें नायक-नायिका के बीच मृणालवलय पहनाने का प्रेमभरा जो सहचार है, एवं उसीके सिलसिले में पुष्परज से कलुषित हुई शकुन्तला की दृष्टि को स्वच्छ कर देने की दुष्यन्त की चेष्टावाला दृश्य, सही स्वरूप में मदनलेखादि के पूर्वप्रसंगों के अनुसन्धान में समुचित एवं आवश्यक लगता है ।क्योंकि उसीके आधार पर ही (बिना किसी तरह से उकसाये) दोनों का प्रेममिलन नैसर्गिक प्रतीत होता है[13] ।। (किन्तु दाक्षिणात्य वाचना के पाठशोधकों ने इस नाटक को अल्प समयावधि में रंगमंच पर प्रस्तुत करने योग्य बनाने के लिए उपर्युक्त दोनों दृश्यों की कटौती कर दी है । तथा दाक्षिणात्य वाचना में तीसरे अंक का जो संक्षिप्त आकार बनायागया उसीका अनुसरण देवनागरी वाचना में भी हुआ है ।)

पहले यह कहा गया है कि मूल पाठ में कटौती की जाने के बाद कथा-प्रवाह की अक्षुण्णता बनाये रखना भी परम आवश्यक है । अतः यह भी गवेषणीय है कि बृहत्पाठ में से दो दृश्यों को हटा कर संक्षिप्त किये गये पाठ का पुनःसन्धान कहाँ पर कर लिया गया है ? । दोनों सहेलियाँ शकुन्तला को राजा के पास छोड़ कर रंगभूमि से विदा लेती हैं । राजा शकुन्तला को गान्धर्व-विवाह का मार्ग सूचित करके पितृ-अनुमति के विचार से मुक्ति दिलवाता है । किन्तु शकुन्तला फिर भी सहेलियों की राय लेने का सोचती है । इस क्षण का संवाद देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठ अनुसार कैसा है वहपहले द्रष्टव्य है :

शकुन्तला– मुञ्च तावन्माम् । भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये ।

राजा– भवतु, मोक्ष्यामि ।

शकुन्तला– कदा ।

राजा–अपरिक्षतकोमलस्य यावत्, कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।

---

[12]डॉ. रिचार्ड पिशेल, डॉ. बेलवालकर एवंडॉ. दिलीप कुमार काञ्जीलाल ने इस *गान्धर्वेण विवाहेन0* श्लोक के सन्दर्भ में पाठालोचन के नाम पर कुछ भी टिप्पणीनहीं की है । (द्रष्टव्यA Reconstruction of the S'akuntalam,(p. 68)

[13]यहाँ कोई कहेगा कि सप्तमांक में दुष्यन्त ने स्वयं अपने विवाह को "गान्धर्व-विवाह" नाम दिया है । जैसे कि –*इमाम् आज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिदौर्बल्यात् प्रत्यादिशन् अपराद्धोऽस्मि ।* तो इस वाक्य को देख कर कैसे कहेंगे कि प्रकृत श्लोक प्रक्षिप्त ही है ? इसका समाधान यह है कि किसी विवाह को गान्धर्वविवाह शब्द से परिभाषित करना एक बात है, और गान्धर्वविवाह शब्द का उपयोग करके किसी नारी को विवाह के लिए सद्यः उत्तेजित करना – वह दूसरी बात है । दुष्यन्त ने इस शब्द का विनियोग करके नायिका को उकसाया है, पटा लिया है ।।

अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि, गृह्यते रसोऽस्य ।।

(इति मुखमस्याः समुन्नयितुमिच्छति । शकुन्तला परिहरति नाट्येन)

नेपथ्ये– चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी ।

यह श्लोक केवल देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं में ही है । (बृहत्पाठ परम्परा में तो यहाँ एक अलग ही श्लोक हैः—जैसे कि, इदमुप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम् । ननु कमलस्य मधुकरः संतुष्यति गन्धमात्रेण ।।) लघुपाठ परम्परा में ही मिलनेवाला यह श्लोक"मालभारिणी" छन्द[14] में लिखा गया है, जो गुजरात के हेमचन्द्राचार्य ने पहलीवार 11वीं शतीं में परिभाषित किया था । दूसरी ओर यह श्लोक वृहत्पाठ परम्परा में (काश्मीरी, मैथिली एवं वंगाली) नहींहै ।इन दो कारणों से सिद्ध होता है कि संक्षेपीकरण के वाद जो अपेक्षित सन्धान करना था, वह इस लघुपाठवाली वाचनाओं के उपर्युक्त श्लोक से कर लिया गया है। किन्तु यह श्लोक उत्तरवर्ती काल में विकसित एक नवीन छन्द में रचा गया प्रक्षिप्त श्लोक है ।।

****

इसी तरह से, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना के पाठ में कटौती होने का अद्यावधि अनजान रहा एक प्रमाणान्तर भी ध्यानार्ह हैः-- प्रथमांक के भ्रमरबाधा प्रसंग में देखा जाय तो (राघवभट्ट के द्वारा स्वीकृत देवनागरी वाचना के पाठ में) राजा के मुख में "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्0।" श्लोक को "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना के साथ रखा गया है । तथा इस पाठ में "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते0" वाला दूसरा श्लोक मिलता ही नहीं है । यहाँ नायक के मन में भ्रमर के प्रति ईर्ष्याभाव उदित हुआ है ऐसा दिखाना अभिप्रेत है । अतः राजा ने जो "चलापाङ्गां दृष्टिं0" वाला श्लोक प्रस्तुत किया है, उसको तो "सासूयम्" जैसी रंगसूचना के साथ होना अनिवार्य था । किन्तु देवनागरी वाचना के पाठ में संक्षेपीकरण करते समय यह बात किसी अज्ञात पाठशोधक के ध्यान में नहीं आई । इस लिए "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना के साथ जो "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते0" वाला श्लोक मूल में था, उस श्लोक की कटौती की जाने के बाद भी वह "सस्पृहम्" रंगसूचना यथावत् बनी रही ! तथा वह अनुगामी "चलापाङ्गां दृष्टिं0" वाले श्लोक के साथ जुड गई !! (यहाँ रंगसूचना सम्वन्धी ऐसी विसंगति, जो बहुत दूर से चली आ रही है, उसकी ओर एक भी पाठसम्पादक का अद्यावधि ध्यान गया ही नहीं है !!!) इस प्रमाणान्तर से भी सिद्ध होता है कि वर्तमान दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठों में रंगकर्मिओं के द्वारा अनेक स्थानों पर संक्षेप किया गया है ।।

****

दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं में जो संक्षेपीकरण हुआ है उसका उपर्युक्त प्रमाणों से समर्थन हो रहा है । उसके प्रतिपक्ष में जो बृहत्पाठ को सुरक्षित रखनेवाली तीन वाचनाएँ हैं, उसमें (यद्यपि अनेक स्थानों पर प्रक्षेप भी हुए है, तथापि) वहुशः अखण्ड पाठ मिल रहा है ऐसी प्रतीति होती है । अतः इसके आधार पर यह भी कहना होगा कि लघुपाठ की वाचनाओं की अपेक्षा से बृहत्पाठ की रक्षा करनेवाली तीनों वाचनाएँ पुरोगामिनी हैं । अतः इन बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं को "वे तो प्रक्षेपों से भरी वाचनाएँ हैं" ऐसा पूर्वाग्रह से बोल कर, उनको त्याज्य मानना ठीक नहीं है । क्योंकि नाट्यकृति के पाठ में जो द्विविध (प्रक्षेप एवं संक्षेप) विकृतियाँ रंगकर्मी लोग पैदा करते है, उनमें से संक्षेपीकरण की विकृति की अपेक्षा से जो प्रक्षेपण की प्रवृत्ति होती है वह बहुत कम हानिकारक होती है ! क्योंकि प्रक्षेपों के होते हुए भी मूल भाग तो यथावत् बना रहता है । फिर तो केवल प्रक्षेपों की पहचान करके, उसको निकाल देने से मूल पाठ्यांश

---

[14]ससजाः प्रथमे पदे गुरू चेत् सभरा येन च मालभारिणीयम् इति राघवभट्टः । (पृ. 111)

पुनरपि हस्तगत करने में कोई कठिनाई नहीं रहती है। अतः दाक्षिणात्य वाचना के पाठशोधकों के द्वारा शूरु की गई संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति ही, (जिसका देवनागरी वाचना में अनुगमन किया गया है), कालिदास के इस नाटक के मौलिक पाठ्यांश को ज्यादा हानिकारक सिद्ध हुई है ।।

देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं के तृतीयाङ्क में 24 (या 26) श्लोकों का विस्तार है । उसके प्रतिपक्ष में, बृहत्पाठ परम्परावाले अभिज्ञानशकुन्तल में 35से लेकर 41श्लोकों का विस्तार दिखता है। इसका सूचितार्थ ऐसा है कि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना के पाठों में कुछ दृश्यों की कटौती हुई है। बृहत्पाठों को देखने से मालूम होता है कि लघुपाठवाली इन दोनों वाचनाओं में से कुल दो दृश्यों को हटाये गये हैं। जैसे कि, (क) रंगभूमि से सखियों का निष्क्रमण होने के वाद नायक-नायिका रंगमंच पर अकेले हैं। तव नायक शकुन्तला के हाथ से गिरे मृणाल-वलय को पहनाता है। और तत्पश्चात् (ख) दुष्यन्त शकुन्तला को वह मृणाल-वलय कैसा लगता है ? ऐसा प्रश्न करता है, उसी क्षण पवन की लहर चलने पर उसकेनेत्र में कर्णोत्पल की रज गिरती है। अबउसकी दृष्टि कलुषित होने पर दुष्यन्त अपने वदनमारुत से उसे निर्मल कर देता है ।शकुन्तला केकरीव आने पर दुष्यन्त को उसके अधरपान की इच्छा होती है, किन्तु शकुन्तला मुख को घुमा लेती है। तब अचानक नेपथ्य से उक्ति सुनाई देती है कि हे चकवी, तुम अपने प्रिय सहचर से विदा लेलो, रात्रि का आगमन हो गया है। रंगमंच पर गौतमी का आगमन होता है और वहशकुन्तला को लेकर चली जाती है, तब अङ्क समाप्त होता है। अव, ये दोनों ही दृश्यों लघुपाठ में अनुपलब्ध है,परन्तु वे दोनों बृहत्पाठ में तो सुरक्षित है, सर्वथा उपलब्ध होते हैं। अतः इन दोनों की मौलिकता हमारी परीक्षा का विषय वनता है:---

अब हमें यह देखना हैं किउपर्युक्त दोनों ही दृश्य मौलिक पाठ के रूप में इस नाट्यकृति में पहले से ही थे ऐसा कैसे सिद्ध हो सकेगा ? तो तीसरे अङ्क के उपान्त्य श्लोक में जो विसाभरण (अर्थात् लीलाभरण याने मृणालवलय) का निर्देश आता है उससे ही सिद्ध होता है कि पहलेवाला दृश्य मूल में था। कवि ने यदि शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाने का प्रसंग लिखा ही नहीं था तो फिर उपान्त्य श्लोक में वे शकुन्तला की जिन तीन चीजों का परिगणन दुष्यन्त के मुख से करवाते हैं, उसमें विसाभरण(=मृणालवलय) का उल्लेख ही नहीं करते। एवमेव, इस मृणालवलय का बार बार गिरना भी अवश्यंभावी था, क्योंकि इस अङ्क के आरम्भ में ही, जब शकुन्तला रंग पर प्रविष्ट हुई है तव से दुष्यन्त ने ही कहा है कि शकुन्तला ने अपने हाथ में एक मृणाल-वलय पहना है, जो शिथिल भी है[15] ।।

इस मृणाल-वलय का प्रसंग मूलगामी पाठ में होना एक अन्य आन्तरिक सम्भावना से भी समर्थित होता है:--- जिस लतामण्डप में दुष्यन्त-शकुन्तला का एकान्त मिलन होता है वहाँ आरम्भ में शकुन्तला लतामण्डप से वाहर चली जाती है। तव दुष्यन्त शकुन्तला के मणिवन्धन से गलित हुए मृणालवलय को देखता है, जिसको वह "*हृदयस्य निगडम् इव*" कहता है[16], फिर उसको उठा लेता है और अपने गले लगाता है। उस वलय को वापस लेने के वहाने शकुन्तला लतामण्डप में जव पुनःप्रविष्ट होती है वहाँ प्रिया शकुन्तला को देखते ही दुष्यन्त सहर्ष वोलता है:-"*अये, जीवितेश्वरी मे प्राप्ता*।" इसके वाद, दुष्यन्त ने जव शकुन्तला के हाथ में उसे पहनायातव शकुन्तला के मुख से "*त्वरताम् त्वरताम् आर्यपुत्रः*।" ऐसा सम्वोधन निकलता है। कङ्कण-स्वरूप मृणाल-वलय पहनाने के अवसर पर शकुन्तला के मन में दुष्यन्त के लिये पतिभाव प्रकट हुआ हो यह अत्यन्त स्वाभाविक है। इस दृष्टि से, मृणाल-वलय प्रसंग में नायक-नायिका ने परस्पर

---

[15]स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयम्, प्रियायाः सावाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम्। (3 – 10)

[16]इस श्लोक को वर्द्धमान ने गणरत्नमहोदधि (12वीं शती)में उद्धृत किया है।

जो"जीवितेश्वरी" और "आर्यपुत्रः" कहा है, उससे मालूम होता है कि इन दोनों के दिल मेंदाम्पत्य भाव प्रकट हुआ है। यह क्षण प्रेक्षकों को दिखलानाज़रूरी था।क्योंकि मुद्रिका मिल जाने के वाद अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों के सामने विरही दुष्यन्त के मुख से कदाचित् "गोत्र-स्खलन" हो जाता है,ऐसा षष्ठाङ्क मेंनिरूपण आता हैतो (*दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचिताम् अन्तःपुरेभ्यो यदा, गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षिश्चिरम्। शाकु. 6,*) वह विलकुल निराधार है ऐसा नहीं लगता है ।।

किन्तु देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में तो यह मृणाल-वलय का प्रसंग नहीं है। अतः वहाँ षष्ठाङ्क में गोत्र-स्खलन का जव निर्देश आता है तव उसका कोई पूर्व-निर्दिष्ट आधार नहीं मिलता है। क्योंकि इन दोनों में उपर्युक्त दृश्य की कटौती हुई है। कहने का तात्पर्य यही है कि वृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में मृणाल-वलय का प्रसंग जो सुरक्षित रहा है, उस प्रसंग के निमित्त से ही षष्ठाङ्क में आनेवाले गोत्र-स्खलन के प्रसंग की स्वाभाविकता प्रतीतिकर वनती है। दूसरे शब्दों में कहे तो, षष्ठाङ्क में आनेवाले गोत्र-स्खलन के निर्देश का आधार केवल वृहत्पाठानुसारी तृतीयांक में आये हुए मृणाल-वलय के प्रसंग में ही मिल सकता है ।।

शकुन्तला की दृष्टि पुष्परज से कलुषित होने पर दुष्यन्त उसे अपने वदन-मारुत से निर्मल कर देता है,इस दूसरे प्रसंग की मौलिकता भी कृति-निष्ठ अन्तःसाक्ष्य से समर्थित होती है।यहाँ प्रथमतः यही वात विचारणीय है कि शकुन्तला की दृष्टि कलुषित होने जैसे किसी प्रसंग की हम अपेक्षा रख सकते हैं या नहीं ? प्रथमाङ्क में वृक्षसेचन के दौरान परिश्रान्त हुई शकुन्तला का दुष्यन्त ने जो वर्णन किया है, इस श्लोक में कहा गया है कि, *स्रस्तं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं, बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः* (शाकु. 1-26, (राघवभट्ट, 2004) पृ. 47) अर्थात् शकुन्तला अपने कर्णों में शिरीष पुष्पों को लगाती थी। और इसी लिये षष्ठाङ्क में शकुन्तला का चित्र अंकित करते हुए दुष्यन्त ने फिर से कहा भी है कि –*कृतं न कर्णार्पितवन्धनं सखे, शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्। न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥* (शाकु. 6-18, राघवभट्ट, पृ. 213) इस तरह शकुन्तला अपने कानों में प्रसाधन के रूप में पुष्प लगाती थी, और इसी लिये कदाचित् उसके नेत्र में पुष्परेणु गिरने की सम्भावना (एवं नाटकीय अपेक्षा) तो थी ही। लेकिन यहाँ ऐसा प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या ऐसा कोई प्रसंग महाकवि ने ही अपने हाथों से लिखा होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये उच्चतर समीक्षा को मान्य हो ऐसा कोई प्रमाण देना आवश्यक है : --

महाकवि कालिदास ने इस नाट्यकृति की दृश्यावली में सर्वत्र एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खडा करने की जिसनाट्यकला का साद्यन्त विनियोग किया है उसकी ओर सब का ध्यान आकृष्ट करने की जरूरत है। उदाहरण के रूप में,

(1)प्रथमाङ्क में पिनाकी स्वरूप दुष्यन्त का मालिनी नदी की उपत्यका में मृगया के लिए प्रवेश होता है। वैसे ही सप्तमाङ्क के आरम्भ में इन्द्रसखा दुष्यन्त मारीच के आश्रम में प्रवेश करता है। यहाँ प्रथमाङ्क में शिकारी दुष्यन्त का जो एक रूप प्रस्तुत किया था, उसका ही दूसरा प्रतिरूप दानवहन्ता के रूप में खड़ा किया गया है।

(2) द्वितीयांक में मृगया से विषण्ण और रोता हुआ विदूषक हमारे सामने आता है, तो षष्ठांक के आरम्भ में अकारण ताडित हो रहा दयनीय धीवर हमारे सामने खड़ा किया जाता है। दोनों दृश्य हास्यप्रेरक हैं और दोनों पात्र प्रेक्षकों की सहानुभूति प्राप्त करते हैं। अन्त में एक युवराज हो कर

हस्तिस्कन्ध पर आरूढ होता है, तो धीवर भी शूली से उतार कर हस्तिस्कन्ध पर आरोपित होने जैसा अकल्प्य सुख प्राप्त करता है।

(3) इसी अङ्क में राजमाताएँ पुत्रपिण्डपालन (पुत्रपिण्डपर्युपासन) व्रत कर रही हैं ऐसा वृत्तान्त लेकर करभक हस्तिनापुर से आता है, तो उसके सामने षष्ठाङ्क में साकेतवासी धनमित्र की विधवा निर्वृत्तपुंसवना है ऐसा सुना जाता है।

(4) राजा दुष्यन्त ने कनक-वलय पहना है, तो निसर्गकन्या शकुन्तला ने मृणाल-वलय पहना है। दुष्यन्त अपनी भुजाओं पर उसको बार बार उपर उठाता है[17], तो शकुन्तला का मृणाल-वलय भी बार बार नीचे गिर जाता है!

(5) प्रथमांक में दुष्यन्त भ्रमर की असूया करता हुआ उसके प्रतिस्पर्धी के रूप में सामने आता है, तो वही दुष्यन्त षष्ठाङ्क में भ्रमर का उपदेष्टा[18] एवं शास्ता[19] बन जाता है।

(6) प्रथमाङ्क में शकुन्तला के दुर्दैव का शमन करने एक ऋषि कण्व सोमतीर्थ की यात्रा पर दूर चले जाते है, तो चतुर्थाङ्क में दूसरे ऋषि दुर्वासा शकुन्तला के दुर्भाग्य का विधाता बन कर सामने आते हैं।

(7) तृतीयाङ्क के अन्त में प्रेमाविष्ट नायक को रंगभूमि से बाहर ले जाने के लिए यज्ञ में बाधा डालनेवाला राक्षसोपद्रव होता है, और राजा धनुष्य उठाके रंगभूमि से निष्क्रमण करता है। तथैव, षष्ठाङ्क के अन्त में भी विदूषक को किसी अज्ञात शोणितार्थी से बचाने के लिए विरहसंतप्त नायक धनुष्य उठा कर रंगभूमि से बाहर जाता है।

इस तरह महाकवि ने सम्पूर्ण कृति में एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप (एक दृश्य के सामने दूसरा प्रतिदृश्य) खड़ा करने की स्पृहणीय नाट्य-शैली का मार्ग अपनाया है।

हमारे लिये उपरि निर्दिष्टनाट्यशैली भी कृति-निष्ठ एक अन्तःसाक्ष्य बनती है, और उसके आधार पर काश्मीरी, मैथिली और बंगाली वाचनाओं के तृतीयाङ्क में कर्णोत्पल रेणु सेशकुन्तला की दृष्टि कलुषित होने का जो प्रसंग वर्णित किया है उसका समर्थन किया जा सकता है। जैसे कि – तृतीयाङ्क में दुष्यन्त ने अपने वदन-मारुत से शकुन्तला की दृष्टि निर्मल कर दी थी। उसी एक दृश्य के सामने, षष्ठाङ्क में कवि ने दूसरा प्रतिदृश्य भी खड़ा किया है। मुद्रिका मिल जाने परजब दुष्यन्त को शकुन्तला का पुनःस्मरण हो जाता है तब वह शकुन्तला का चित्राङ्कन करते हुए एक श्लोक बोलता हैः—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितो निषण्णचमरा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बित-वल्कलस्य च तरोर्निर्मातुम् इच्छाम्यधः,
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥ 6–17॥

इसमें कहा गया है कि मुझे (दुष्यन्त को) इस चित्र में, बह रही मालिनी नदी की बालुका में बैठा एक हंस-मिथुन आकारित करना है। हिमालय की उपत्यका में बैठे चमरों के समूह को बनाना है। वृक्ष की डालियाँ पर वल्कल वस्त्र टाँगे हों, एवं उस वृक्ष के अधोभाग में कृष्णमृग के शृङ्ग पर अपना वाम-नेत्र खुजलाती हुई एक हरिणी भी चित्रित करने की चाहत हो रही है। - यहाँ *"कण्डूयमानां मृगीम्"* का जो चित्र

---

[17]अनतिलुलितज्याघाताङ्कान्मुहुर्मणिबन्धनात् कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते॥ (अ. शा. 3 – 15)

[18]एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि0। (अ. शा. 6 - 22)

[19]बिम्बाधरं दशसि चेत् भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ (अ.श. 6 – 23)

वनाने की इच्छा प्रकट की गई है वह निरतिशय व्यञ्जना पूर्ण है। षष्ठाङ्क में वर्णित इस प्रसंग का सम्वन्ध स्पष्ट रूप से (बृहत्पाठवाले) तृतीयाङ्क में पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्रवाले प्रसंग के साथ ही है। वहाँ पर दुष्यन्त ने जव अपने वदन-मारुत से शकुन्तला की दृष्टि को निर्मल कर देने का प्रस्ताव रखा था, तव शकुन्तला ने कहा था कि मेरे मन में तुम्हारे लिये विश्वास नहीं है। किन्तु दुष्यन्त इस चित्र से व्यंजित करना चाहता है कि वह अब शिकारी के रूप में शकुन्तला को प्राप्त करना नहीं चाहता है। परन्तु हरिणी स्वरूपा शकुन्तला का "सगन्ध" और विश्वसनीय हरिण बनकर, शकुन्तला का जीवनाधार बनना चाहता है !दुष्यन्त ने तृतीयाङ्क के उसी प्रसंग को स्मरण में रख कर, षष्ठांक में एक प्रतिदृश्य के रूप में यह *"कण्डूयमानां मृगीम्"* का चित्र बनाने की इच्छा प्रकट की है। इस तरह एक दृश्य के सामने दूसरा प्रतिदृश्य खड़ा करने की जो नाट्य-शैली समग्र कृति में बार बार दिखाई देती है उसको तार्किक दृष्टि से आन्तरिक सम्भावना के रूप में स्वीकारना ही चाहिये ।इसके आधार पर पुष्परज से शकुन्तला के नेत्र कलुषित होने काजो प्रसंगहै वह प्रक्षिप्त नहीं है। बल्कि सच तो यही है कि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं में इस दृश्य की कटौती की गई है, जिसको अवस्वीकारना ही चाहिए ।।

एवमेव, सप्तमाङ्क में शकुन्तला दुष्यन्त को पूछती है कि इस दुःखभागी व्यक्ति की याद आपको कैसे आयी ? तव दुष्यन्त कहता है कि पहेले तुम्हारी आंसू-भीगी आँखों को पोंछने दो, वाद में अङ्गूठी कैसे मिली उसकी कहानी सुनाऊँगा। यहाँ पर, फिर से शकुन्तला के अश्रु भरे नेत्रों का परिमार्जन करने[20] का जो निर्देश आया है वह भी एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खड़ा करने की नाट्यशैली का ही अनुमोदन एवं दृढीकरण करता है ।।

निष्कर्षतः कहेंगे कि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं का (अभिज्ञानशाकुन्तलम् शीर्षकवाला) लघुपाठ वर्तमान काल में जो सर्वत्र प्रचलन में है, वह तो एक संक्षिप्त की गई रंगावृत्ति का ही पाठ है। तथा संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति से (तृतीयांक में से) जिन दो दृश्यों की कटौती की गई है वे दोनों बृहत्पाठवाली काश्ममीरी आदि तीनों वाचनाओं में (कुछ प्रक्षिप्तांश के साथ) सुरक्षित है ।।

[6]

अब **अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाठयात्रा**पर विचार करना अभीष्ट है :--- पूर्वोक्त चर्चा से यह निर्णित हो गया है कि इस नाटक के मूल बृहत्पाठ में रंगकर्मिओं के द्वारा संक्षेप हुआ है, जो दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं में संक्रमित हुआ है। अतः बृहत्पाठ को सुरक्षित रखनेवाली जो तीन (काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली) वाचनाएँ हैं, उनका पुरोवर्तित्व अपने आप सिद्ध हो जाता है। क्यूंकि कवि कालिदास ने अपने हाथों से इस नाटक का जो मूल (पहला) पाठ लिखा होगा वह यदि बृहत्पाठ होगा, तभी तो उसमें कालान्तर में मंचन के लिए कुछ दृश्यों को हटा कर संक्षेप किया गया होगा !

बृहत्पाठ जिन तीन वाचनाओं में सुरक्षित रहा मिलता उन तीनों में से किसका प्राथम्य सिद्ध होता है? वह विचारणीय, गवेषणीय बिन्दु है। क्योंकि पाठालोचना का प्रथम लक्ष्य यही होता है कि प्राचीन से प्राचीनतर, एवं प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ की पहले गवेषणा की जाय। (तथा अन्ततो गत्वा, मूल कवि ने क्या लिखा होगा, या सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ क्या हो सकता है ? उसकी सप्रमाण प्रतिष्ठा करना।)अतः लघुपाठ की अपेक्षा से यदि बृहत्पाठवाली तीनों वाचनायें पुरोवर्तिनी है, तो उन तीनों में से कौन सी वाचना सब से पुरानी है ? यह सोचना चाहिए। क्योंकि किसी एक वाचना की प्राचीनतमता निश्चित हो जाने के बाद ही, अन्यान्य वाचनाओं में पाठविचलन की आनुक्रमिकता (पौर्वापर्य) निर्धारित हो सकती है ।।

---

[20]**राजा**– उद्धृतविषादशल्यः कथयामि। मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः। तं तावद् आकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि ।। (अ. श. 7 – 25)

काश्मीरी वाचना की प्राचीनतमता: वर्तमान में उपलब्ध हो रही इस नाटक की पाण्डुलिपियाँ नेवारी, मैथिली, बंगाली, शारदा, नन्दिनागरी, देवनागरी, ग्रन्थ, तेलुगु आदि लिपियों में लिखी हुई मिलती हैं। लिपियों के इतिहास की दृष्टि से सोचा जाय तो शारदा लिपि ही प्राचीनतम है। क्योंकि ई. स. 850 में लिखा हुआ राजा मेरु वर्मा का एक शिलालेख शारदा लिपि में उत्कीर्ण किया गया है। अतः शारदा लिपि का प्रचलन 6 या 7 वीं शती में भी होगा। अतः उस शारदालिपि में लिखी हुई पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ ही प्राचीनतम हो सकता है। इस लिए इस नाटक की जो पाँच शारदा पाण्डुलिपियाँ मिल रही हैं, उनमें से कुछ पाठान्तरों की ओर विद्वज्जगत् का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। जिनसे इस वाचना की प्राचीनतमता का दृढीकरण हो सकता है। तद्यथा,

(क) काश्मीरी वाचना में, तृतीयांक के आरम्भ में रंगसूचना है :"ततः प्रविशति कामयानावस्थो राजा"किन्तु मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में इसी सन्दर्भ में "ततः प्रविशति मदनावस्थो राजा" देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में यहाँ "ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा।" इन पाठान्तरों में से कौन सा पाठान्तर सब से प्राचीनतम होगा ?। आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में "कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्। (5-2-82)" इस सूत्र से लिखा है कि कामयान शब्द (व्याकरण से सिद्ध करना मुश्कील है, तथापि) यदि वह अनादि काल से चला आ रहा है तो उसे सिद्ध शब्द ही मानना होगा। काशी के मूर्धन्य आलंकारिक पं. श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि स्वयं कालिदास ने रघुवंश (19-50) में भी इस शब्द का प्रयोग किया है। अतः मैथिली, बंगाली या देवनागरी वाचनाओं में जो पाठान्तर मिलते हैं वे सभी परवर्ती काल के सिद्ध होते है। केवल काश्मीरी वाचना में सुरक्षित रहा "कामयान" शब्द ही प्राचीनतम सिद्ध होता है ।। इस तरह से काश्मीरी वाचना में "0कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु। (3-32)" श्लोक आता है। इसकामैथिली एवं बंगाली वाचना में जो पाठ है वह "0कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तत्। (3-37, एवं 3-38)" ऐसा है। इस तरह के दो पाठभेदों में से कौन पाठ प्राचीनतम होगा ? यह प्रश्न है। तो आनन्दवर्धन ने निपातों की व्यंजकता के बारे में चर्चा करते हुए इस श्लोक का उद्धरण दिया है, जिसमें काश्मीरी वाचना के अनुसार ही "0कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु।" पाठ रखा गया है। आनन्दवर्धन का सर्वमान्य समय 840- 890 ई. स. अनुमाना गया है। इस दूसरे बहिरंग प्रमाण से भी सिद्ध होता है कि काश्मीरी वाचना में संचरित हुआ इस नाटक का पाठ ही प्राचीनतम है।।

(ख) तृतीयांक में, दुष्यन्त मध्याह्न की वेला में प्रिया शकुन्तला को ढूँढ़ता हुआ मालिनी नदी के तट पर पहुँचता है। लतावलय में सखियों के साथ शकुन्तला को देख कर उसके मुख में से वाक्य निकलता है :"अये लब्धं मया नेत्रनिर्वाणम्।" यह पाठ सभी वाचनाओं में एक समान है। केवल काश्मीरी वाचना में "अये लब्धं मया नेत्रनिर्वापणम्।" ऐसा पाठभेद मिल रहा है। पाण्डुलिपियों के प्रतिलेखन की सुदीर्घ परम्परा में, किसी भी लिपिकार के द्वारा "निर्वापण" या "निर्वाण" लिखने में अनवधान से या दृष्टिभ्रम से एक के स्थान में दूसरा शब्द स्थानापन्न हो सकता है। (इसी को अनुलेखनीय सम्भावनायुक्त पाठभेद कहा जाता है।) अतः इन दोनों में से कौन सा पाठभेद मूल में होगा यह निश्चित करना कठिन है। किन्तु इसी अङ्क के आरम्भ में, कण्वाश्रम का शिष्य प्रियंवदा को आकाशोक्ति से पूछता है कि अरे, तुम किसके लिए यह उशीरानुलेप और नलिनीपत्र ले जा रही हो ? तव प्रियंवदा उसका प्रत्युत्तर देती है कि "आतपलङ्घनाद् वलवदवस्था शकुन्तला, तस्याः शरीरनिर्वापणायेति।" यहाँ पर सभी

वाचनाओं में एक समान "शरीरनिर्वापणायेति" ऐसा ही पाठ है, इसमें अन्य कोई पाठान्तर नहीं है। एवमेव, आगे चल कर दुष्यन्त की उक्ति है,"स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव जातः।" उसमें भी "निर्वापयिता" शब्द ही है। इस तरह से इसी कृति के आन्तरिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि काश्मीरी वाचना में मिल रहा "अये लब्धं मया नेत्रनिर्वापणम्।" ऐसा पाठ ही मौलिक हो सकता है। अतः इस वाचना को ही प्राचीनतम होने का गौरव प्राप्त हो रहा है॥

(ग) शकुन्तला प्रियंवदा को कहती है कि "हला, अलं वः अन्तःपुर-विरह-पर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरुद्धेन।" यह वाक्य काश्मीरी वाचना को छोड़ कर अन्य सभी वाचनाओं में एक समान है। काश्मीरी वाचना में इस वाक्य का स्वरूप ऐसा है :"हला, अलं वः अन्तःपुर-विहार-पर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरोधेन।" यहाँ पर भी पाण्डुलिपियों के प्रतिलेखन के दौरान विरह के स्थान पर विहार हो सकता है, अथवा विहार के स्थान में विरह हो सकता है। अतः मूल में कौन सा पाठ कवि ने अपने हाथों से लिखा होगा ? उसका निर्णय करना मुश्कील है, एवं विवादास्पद भी है। तथापि प्रकृत में पूर्वापर सन्दर्भ में कहे गये वाक्यों को बारिकी से देखा जाय तो अनसूया की उक्ति महत्त्व-पूर्ण है। उसने कहा है कि *वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नः सखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निर्वाहय*। इसमें राजाओं को बहुसंख्यक वल्लभाओं वाले कहे गये हैं, इसको यदि ध्यान में लिया जाय तो "बहु" शब्द का "विहार" शब्द के साथ ही सामञ्जस्य ठीक बैठता है। मतलब कि काश्मीरी वाचना के पाठ में ही आन्तरिक सम्भावनापूर्ण पाठ संचरित होकर हम तक सुरक्षित स्वरूप में पहुँचा है। अतः काश्मीरी वाचना के पाठ को प्राचीनतम मानना प्रमाणसिद्ध बात है॥

(घ) चतुर्थांक में, शकुन्तला पिता कण्व से पूछती है :*कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये। (इति रोदिति)*। यह काश्मीरी वाचना का पाठ है। लेकिन मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में एक नया ही उपमान रखा गया है। जैसे कि, *कथमिदानीं तातस्य अङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वतादुन्मूलिता इव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि* ॥ इन दोनों पाठान्तरों की उच्चतर समीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि कण्वाश्रम हिमालय की गोद में अवस्थित था। अतः वहाँ निसर्गकन्या शकुन्तला के सामने करिसार्थ का होना ही भौगोलिक सत्य है। उस स्थान में चन्दनलता का होना सम्भव ही नहीं है। इस तरह सोचा जायेगा तो काश्मीरी वाचना का पाठ प्राचीनतम एवं मौलिकता के नज़दीक सिद्ध होता है॥

द्वितीय क्रम पर मैथिली, एवं तीसरे क्रम पर बंगाली वाचना का समुद्भवःकाश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम होने के कारण "अभिज्ञानशकुन्तला"नाटक प्रथम क्रम में आता है। अब प्रश्न होगा कि बृहत्पाठ की अन्य दो (मैथिली एवं बंगाली) वाचनाओं में कौन सा पौर्वापर्य होगा ?। यद्यपि यह प्रश्न सुलझाना बहुत कठिन है। क्योंकि इन दोनों वाचनाओं में इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञान-शकुन्तलम्" है। तथा विद्वानों के द्वारा ऐसा कहा गया है कि मैथिली वाचना का स्वतन्त्र अस्तित्व मानना उचित नहीं है। प्रॉफे. वी. राघवन् ने कहा है कि मैथिली वाचना का पाठ कदाचित् बंगाली की ओर झुकता है, एवं कदाचित् काश्मीरी पाठ की ओर झुकता है[21]। यही बात डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने भी कही है। इस तरह के

---

[21] Its editor claims that this text represents a Maithili recension of the play but such a fifth recession is not justified by facts. This text belongs to the Bengali-Kashmiri family, sometimes leaning towards the

निरीक्षण में सच्चाई अवश्य है। किन्तु मैथिली वाचना का इस तरह का उभयत्र साम्य कुछ राज़ की बात कह रहा है। जैसे कि, (1) मैथिली वाचना के पाठ का जहाँ जहाँ बंगाली वाचना के साथ वैषम्य है और काश्मीरी पाठ के साथ साम्य है, वहाँ उस मैथिली पाठ को पाठविचलन के द्वितीय क्रमांक पर रखना होगा। एवमेव, (2) जहाँ मैथिली पाठभेदों का काश्मीरी पाठ के साथ वैषम्य है, एवं बंगाली पाठभेदों के साथ साम्य है वहाँ ऐसा अनुमान करना होगा कि जो पाठभेद एवं प्रक्षेप (पहले काश्मीरी वाचना में नहीं थे,) वे सब पहले मैथिली में दाखिल हुए होंगे। तथा उन सब पाठभेदादि उत्तरवर्ती काल में (यानें तृतीय स्तर पर) बंगाली वाचना में प्रविष्ट हुए होंगे ।। ऐसे मैथिली वाचना के पाठ को काश्मीरी से पश्चाद्वर्ती काल का, और बंगाली वाचना से पुरोगामी काल का मानने से, मैथिली के उस उभयत्र दिख रहे साम्य-वैषम्य को हम सटीक समझा सकते हैं ।। इस सन्दर्भ में निदर्श रूप दो उदाहरण देखना जरूरी है : --

(क) तीसरे अङ्क में दुष्यन्त-शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह होता है। इसमें शृङ्गारिक दृश्यावली होने के कारण रंगकर्मिओं के द्वारा अनेक श्लोकों का प्रक्षेप हुआ हैं। काश्मीरी वाचना में इस अङ्क के 35 श्लोक हैं। मैथिली वाचना के पाठ में 40 श्लोक है, तथा बंगाली वाचना में 41 श्लोक है। यहाँ श्लोकों की संख्या में जो क्रमिक वृद्धि दिखाई रही है, उसमें भी ये तीन वाचनाओं की क्रमिक पाठयात्रा स्पष्ट हो रही है। जैसे कि, काश्मीरी वाचना में "तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वम्0" (3-4) श्लोक के पीछे, पाँचवे श्लोक के रूप में "शक्योऽरविन्दसुरभिः0" आता है। किन्तु इसी सन्दर्भ में, मैथिली वाचना की श्लोकशृङ्खला देखते है तो वहाँ पर तीन श्लोकों का प्रक्षेप मिलता है :-- 1."अनिशमपि मकरकेतु0", 2. "वृथैव संकल्पशतैर0", तथा "संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोषाः0" ।। बंगाली वाचना ने इन्हीं तीन श्लोकों को स्वीकार लिये हैं। एवमेव आगे चल कर एक चौथे श्लोक का नया प्रक्षेप भी किया है। यह चौथा श्लोक मैथिली वाचना में नहीं था। "स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं0", एवं "क्षाम-क्षाम-कपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं0" इन दोनों के बीच में बंगाली पाठशोधकों ने एक नया श्लोक दाखिल किया, तथा उस श्लोक के पूर्व में प्रियंवदा और अनुसूया की दो नवीन उक्तिओं को भी प्रक्षिप्त की हैं। इस नये प्रक्षिप्तांश का पाठ इस तरह का हैः—

"**प्रियंवदा**–*(जनान्तिकम्) अणुसूये, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरम्भिअ पज्जुस्सुअमणा सउन्तला। ण क्खु से अण्णणिमित्तो आदङ्को भवे ।।*

अनुसूया–*ममावि एरिसी आसङ्का। भोदु। पुच्छिस्सं। सहि, पुच्छिदव्वा सि किं पि। बलीओ क्खु अङ्गसंतावो ।।*

राजा–*वक्तव्यमेव,*

शशिकरविशदान्यस्यास्तथा हि दुःसहनिदाघशंसीनि।
भिन्नानि श्यामिकया मृणालनिर्माणवलयानि ।। (3-12) ।।"

इस पूरे सन्दर्भ में हम देख सकते हैं कि मैथिली वाचना के द्वारा प्रक्षिप्त किये तीन श्लोकों का बंगाली पाठशोधकों ने पहले अनुगमन किया है। तदनन्तर उसी दिशा में आगे बढते हुए, एक नवीन चौथे श्लोक का प्रक्षेप भी अपनी ओर से कर दिया है। अतः इस नाटक के पाठविचलन की आनुक्रमिकता में काश्मीरी वाचना के तुरंत पीछे, याने दूसरे क्रम में, मैथिली वाचना खडी है।

Bengali and sometimes towards the Kashmiri. - V. Raghavan, Introduction, p. 3, The Abhijnanasakuntala, Ed. S. .K. Belvalkar, Sahity Akademy, Delhi, 1965.

तथा मैथिली के पीछे, यानें तीसरे क्रम में, बंगाली वाचना का पाठ आता है। कवि के द्वारा प्रणीत जो पाठ था वह इस तरह से बृहत् से बृहत्तर, और बृहत्तर से बृहत्तम बनता चला है ।।

डॉ. रिचार्ड पिशेल द्वारा सम्पादित बंगाली अभिज्ञानशकुन्तल की समीक्षितावृत्ति में 221 श्लोकों को मान्य किये गये हैं। किन्तु बंगाली पाठ के टीकाकार चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने 225 श्लोकों पर टीका लिखी हैं[22]। सारांशतः बंगाली वाचना में ही इस नाटक का कलेवर सब से बडा है ! ।।

(ख) काश्मीरी पाठ में राजा के परिजन-वर्ग में लिपिकरी मेधाविनी नामक दासी है। और देवी कुलप्रभा के परिजन-वर्ग में एक दासी पिङ्गलिका है। काश्मीरी पाठ में, इन दोनों दासियों के बीच में टकराव होता है। (इसमें कुलप्रभा ईर्ष्या-कषायित नहीं होती है, वह सर्वथा सौजन्यपूर्ण है।) मैथिली पाठ में, मेधाविनी एवं पिङ्गलिका की उपस्थिति तो यथावत् रूप में मिलती है। किन्तु जो पहला परिवर्तन आया है वह ऐसा है कि पिङ्गलिका को साथ में लेकर आ रही रानी वसुमती स्वयं ईर्ष्याग्रस्त होकर, मेधाविनी के हाथों में से वर्तिका-करण्डक छिन लेती है। राजा को अधिक प्रिय होने की स्पर्धा में वह अपने आप राजा के पास जा कर वर्तिका देना चाहती है ।। तीसरी ओर, बंगाली पाठ में देखा जाय तो, राजा के परिजन-वर्ग में अब मेधाविनी के स्थान पर "चतुरिका" आ जाती है ! जो राजा के लिए चित्रफलक ले आती है, और बाद में वर्तिका-करण्डक को लेने भी जाती है। तथा रानी वसुमती की दासी के रूप में पिङ्गलिका यथावत् रूप में विद्यमान है। किन्तु बंगाली पाठ में जो एक असाधारण विसंगति प्रकट रूप में अद्यावधि विद्यमान दिख रही है वह यह है कि मेधाविनी को बदल कर चतुरिका का बंगाली पाठ में नया प्रवेश करवाने के बावजुद भी, पाठशोधक लोग एक स्थान पर पुरानी मेधाविनी को बदल देना भूल गये हैं ! जैसे कि, विदूषकः—*(कर्णं दत्त्वा) भो अहिधावन्ती एसा अन्तेउरवग्घी मेधाविणिं मइं विअ कवलिदुं उवत्थिदा।* (देखो रिचार्ड पिशेल, द्वितीय संस्करण, 1922, पृ. 86, तथा डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल, 1980, पृ. 324) यदि बंगाली पाठ में मेधाविनी के स्थान पर "चतुरिका" नया नाम प्रस्तुत करना ही था, तो उसको षष्ठांक में सर्वत्र क्यूं नहीं बदला ? । लेकिन यह असावधानी हमारे लिए बडी कामकी सामग्री बन गई है। यह विसंगति इस बात की गवाह दे रही है कि मैथिली पाठ का अनुगमन करनेवाला आज का बंगाली पाठ तृतीय क्रमांक पर ही तैयार किया गया है ।।

(ग) चतुर्थ क्रमांक पर दाक्षिणात्य वाचना का संक्षिप्त किया गया पाठ आता है। तथा पञ्चम क्रमांक पर देवनागरी वाचना का संक्षिप्ततर पाठ बनाया गया है। (दाक्षिणात्य वाचना में 193 श्लोक का परिमाण है, किन्तु देवनागरी में 190 श्लोकों को ही रखे गये हैं।) किन्तु बृहत्पाठ में कटौती करके जो रंगमंचीय लघुपाठ बनाया गया है उसका पूर्णतः उत्तरदायित्व तो दाक्षिणात्य वाचना का ही है। क्योंकि दाक्षिणात्य पाठ और देवनागरी पाठों की तुलना करने से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि दाक्षिणात्य पाठ में ही अपेक्षाकृत आन्तरिक सम्भावना अधिक सिद्ध होती है। देवनागरी का पाठ अनेक स्थानों पर सुसंगत नहीं लगता है। अतः लघुपाठवाली इन दोनों वाचनाओं में से दाक्षिणात्य वाचना ही सब से पहले आकारित हुई है ऐसा मानने के लिए हमें बाध्य करनेवाले कतिपय निम्नोक्त सन्दर्भों को देखना आवश्यक है:---

(1) प्रथम अंक के अन्त भाग में, (देवनागरी वाचना में) राजा की उक्ति है :"(आत्मगतम्) अहो धिक्, **पौरा** अस्मदन्वेषिणस्तपोवनम् उपरुन्धन्ति ।" । इसके प्रतिपक्ष में, दाक्षिणात्य वाचना में

---

[22]द्रष्टव्य : अभिज्ञानशकुन्तलम्, (चन्द्रशेखरचक्रवर्तिकृतया सन्दर्भदीपिकया समेतम्), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रकाशक : राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मीशन, दिल्ली, 2013

राजा की उक्ति में ऐसे शब्द है :"(आत्मगतम्) अहो धिक्, **सैनिका** मदन्वेषिणस्तपोवनम् उपरुन्धन्ति ।" यहाँ मृगया-प्रसंग में राजा दुष्यन्त अपने सैनिकों को लेकर आया है, यह बात पहले कही गई है । इस समय हस्तिनापुर का नरेश दुष्यन्त सुदूर हिमालय की उपत्यका में आये हुए कण्वाश्रम में है । तथा नेपथ्योक्ति से कहा भी है कि "भो भोस्तपस्विनः ! सन्निहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत । प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः ।" इस सन्दर्भ में, दुष्यन्त को ढूँढने के लिए उनके सैनिक ही यहाँ आ सकते हैं, हस्तिनापुर के पौराः (पुरवासी लोग) यहाँ क्यूं आयेंगे ? । मतलब कि देवनागरी वाचना का पाठ पूर्वापर सन्दर्भ में विसंगत और अमौलिक सिद्ध होता है । और जो पाठ मौलिक होगा वही प्राचीनतर कहना होगा ।।

(2) दूसरे अंक के अन्तभाग में, कण्वाश्रम के दो शिष्य राजा को विनती करने के हेतु आते हैं । राजा को दूर से ही देख कर वे प्रशंसा में एक-एक श्लोक प्रस्तुत करते हैं । यहाँ दाक्षिणात्य वाचना के अनुसार द्वितीय शिष्य कहता हैः—

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीम्
एकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते सुरयुवतयः त्यक्तभोगा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ।। (2-15)

किन्तु देवनागरी वाचना में, इस श्लोक में एक पाठभेद हैः—

0आशंसन्ते सुरयुवतयः बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ।।

इसमें कहा है कि सुरयुवतियाँ इन्द्रसखा दुष्यन्त के विजय की कामना करती है । वे सुर-युवतियाँ कैसी ? यह कहने के लिए दाक्षिणात्य वाचना के श्लोक में "त्यक्तभोगाः" ऐसा एक विशेषण रखा गया है । दूसरी ओर देवनागरी वाचना में पाठभेद करके सुरयुवतिओं के लिए "बद्धवैराः" विशेषण दिया गया है । इन दोनों में से कौन सा विशेषण कवि ने लिखा होगा ? यह विचारणीय है । सुरयुवतियाँ ने दैत्यों के साथ वैर बाँध लिया है, इस लिए वे दुष्यन्त के धनुष्य के विजय की कामना करती है ऐसा कहना तो ठीक नहीं लगता है । प्रत्युत, सुरयुवतियाँ को भोगों का त्याग करना पड़ रहा है, (क्योंकि सुरों और असुरों के बीच सदैव संग्राम होता रहता है, और वे भोगों से वंचित हो जाती है) इस लिए वे दुष्यन्त के विजय की कामना करती है, ऐसा कहना ही संमुचित होगा । मतलब कि उपर्युक्त दोनों पाठभेदों में दाक्षिणात्य वाचना का पाठ ही आन्तरिक सम्भावना के युक्त है । तथा देवनागरी वाचना का पाठ सुसंगत नहीं है ।।

(3) तृतीयांक में, मदनसंतप्ता शकुन्तला कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है और दुष्यन्त की प्राप्ति के बिना वह मर जायेगी ऐसा अपनी सहेलियों से बताती है तब (दाक्षिणात्य पाठ में) दोनों सहेलियों की जनान्तिक उक्तियाँ निम्नोक्त स्वरूप में रखी गई हैः—

प्रियंवदा– (जनान्तिकम्) अनसूये, दूरगतमन्मथाऽक्षमेयं कालहरणस्य । यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम् । तस्माद् युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम् ।

अनसूया– (जनान्तिकम्) सखि, यथा भणसि । (प्रकाशम्) सखि, दिष्ट्याऽनुरूपस्तेऽभिनिवेशः । सागरमुज्झित्वा कस्मिन् वा महानद्यवतरति ।

प्रियंवदा– को वेदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लविताम् अर्हति ।

राजा – किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते ।।

यहाँ अनसूया प्रियंवदा का जो सुझाव है उसको जनान्तिक उक्ति से पहले सहमति प्रदर्शित करती है। तदनन्तर प्रकाशोक्ति से शकुन्तला को उद्देश्य करके उसके प्रेम-प्रसंग का अभिनन्दन करती है। यहाँ वह शकुन्तला को महानदी और दुष्यन्त को सागर की उपमा देती है। तब उसीके अनुसन्धान में प्रियंवदा भी दुष्यन्त-शकुन्तला के लिए सहकार और अतिमुक्त-लता का उपमान प्रयुक्त करती है ।। अब, इस तरह की दाक्षिणात्य वाचना की योजना से भिन्न जो स्थिति देवनागरी पाठ में मिल रही है, उसको देखते हैः—

प्रियंवदा– (जनान्तिकम्) अनसूये, दूरगतमन्मथाऽक्षमेयं कालहरणस्य । यस्मिन् वद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम्। तस्माद् युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्।

अनसूया– (जनान्तिकम्) सखि, यथा भणसि।

प्रियंवदा – (प्रकाशम्) सखि, दिष्ट्याऽनुरूपस्तेऽभिनिवेशः । सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्य-वतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।

राजा – किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते ।।

इस तरह की योजना में अनसूया की पूरी सक्रियता नहीं दिखती है, क्योंकि उपर्युक्त संवाद-शृङ्खला में, दोनों ही उपमान प्रियंवदा के मुख में ही रखे गये हैं। मतलब कि नायक-नायिका के प्रेमप्रसंग को आगे बढाने में प्रियंवदा ही अधिकतर सक्रिय है ऐसा चित्र उभर कर हमारे सामने आता है ।। एवमेव मंचन की दृष्टि से इन पाठभेदों को देखा जाय तो भी लगेगा कि दाक्षिणात्य पाठ ही ज्यादा नाट्यक्षम सिद्ध होता है। तथा आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से समीक्षा की जाय तो, यहाँ राजा की जो अनुगामिनी उक्ति है वह तभी यथार्थ सिद्ध होगी कि जब एक उपमान का प्रयोग अनसूया के द्वारा किया गया हो, और दूसरा उपमान प्रियंवदा के द्वारा उच्चरित हो। मतलब कि दोनों सहेलियों के मुख में जब एक-एक उपमान रहेगा तब ही उन दोनों के लिए चित्रा-विशाखा नामक नक्षत्रयुग्म का उपमान, एवं "अनुवर्तेते" जैसे क्रियापद में द्विवचन का प्रयोग चरितार्थ हो सकेगा ।।

(4) षष्ठांक के धीवर-प्रसंग में से एक सन्दर्भ लेते हैः—धीवर ने दुष्यन्त-नामधेयांकित अंगुलीयक कहाँ से मिला था उसका जो विवरण दिया था, वह प्रामाणिक सिद्ध होता है। परिणामतः राजाज्ञा से उसे बन्धन में से मुक्त किया जाता है। इस प्रसंग में दाक्षिणात्य वाचना का पाठ निम्नोक्त हैः-

द्वितीयः– एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः। (इति पुरुषमुन्मुक्तबन्धनं करोति)

पुरुषः– (स्यालं प्रणम्य) भट्टा तुम्हकेलए मे जीविदे। (भर्तः, युष्मदीयं मे जीवितम्।)

स्यालः– एष भर्त्रा अङ्गुलीयक-मूल्य-सम्मितोऽर्थः पारितोषिकः प्रदापितः।

(इति पुरुषायार्थं प्रयच्छति)

यहाँ पर धीवर के द्वारा प्राप्त हुई अंगूठी को देख कर राजा की जब शापनिवृत्ति हो जाती है और उसे शकुन्तला का स्मरण होता है तब वह प्रसन्न हो जाता है। इस लिए राजा ने धीवर को बन्धन से मुक्त कर देने की आज्ञा की है। नगर-रक्षकों की दृष्टि में धीवर बडा भाग्यवान् है, क्योंकि वह आज यमसदन जा कर भी वापस आया है ! इसको सुन कर धीवर राजस्यालक को नमस्कार करता हुआ कहता है कि यह तो आपकी ही कृपा है कि मैं जीवित रह पाया हूँ। अब स्याल राजा के द्वारा प्रेषित धनराशि पारितोषिक के रूप में धीवर को देता है। आगे बातचीत करते हुए स्याल ने यह भी कहा कि इस अंगुलीयक को देख कर राजा के नेत्र अश्रुपूर्ण हुए थे।

लगता है कि राजा को कोई अपनी अभिमत व्यक्ति की याद आई थी । तब सूचक नामका नगररक्षक कहता है कि तभी तो आपने (स्याल ने) राजाजी की सेवा ही की है । स्याल स्पष्ट करता है कि सच कहे तो यह सेवा तो इस माछीमार ने ही की है । इतना बोल कर स्याल तुरंत धीवर की ओर असूया से देखने लगता है । तब धीवर सद्यः ही अपने पारितोषक की राशि में से आधा भाग निकाल कर स्याल के हाथों में सुप्रत करता है, तथा कहता है कि मेरी वध्यमाला बनाने के लिए आपके संकल्पित पुष्पों का जो मूल्य हो सकता उसे लिजीए । यहाँ स्याल ने माछीमार की ओर असूया करते हुए जो दृष्टिपात किया था, उसका तात्पर्य समझ कर ही धीवर ने गभराहट में अपने पारितोषिक का आधा भाग दे दिया है ।। इस प्रसंग से धीवर की दयनीय दशा का ही अंदाजा आ रहा है । राजा ने ही उसको बन्धन से मुक्त करने का आदेश दिया था, फिर भी वह डर का मारा हुआ स्याल के प्रति अपनी कृतज्ञता कृतक रूप से प्रकट करता हुआ, "आपके कारण मैं जिन्दा रहा हूँ" ऐसा कहता है । तथा आगे चल कर, राजा के द्वारा ही दिये गये पारितोषिक में से आधा स्याल को भेट कर देता है, क्यूंकि स्याल ईर्ष्याग्रस्त हो कर उसकी ओर देखता है । और देखने मात्र से वह गभरा जाता है ।।

ऐसी दयनीय दशा के वर्णन के विरुद्ध, कुछ और ही चित्र देवनागरी वाचना के पाठ में से मिलता है । जैसे कि, पुरुष (याने धीवर) की उक्ति में सर्वथा नवीन पाठान्तर उपलब्ध हो रहा है:-"**पुरुषः**– भट्टा, अह कीलिशे मे आजीवे । (भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः ।") जब राजाज्ञा से धीवर (माछीमार) को बन्धन से मुक्ति मिलती है तब वह नगर-रक्षकों से पूछता है कि अब आपको मेरी आजीविका कैसी लगती है ?। मतलब कि देवनागरी वाचना का माछीमार स्याल को एवं नगर-रक्षकों को मौका मिलने पर टोना भी मार सके इतना हिम्मतवाला है । यहाँ वह दयनीय या किसी भी तरह की गभराहटवाला नहीं दिखता है ।। किन्तु देवनागरी वाचना का इस तरह का पाठ पूर्वापर में सुसंगत सिद्ध नहीं होता है । क्योंकि माछीमार ने जब जान लिया है कि मेरे पर अब राजा जी का अनुग्रह, उनका वरदहस्त आ गया है, जिसके कारण वह स्याल को टोना भी मार सकता है । तो ऐसी हिम्मत दिखानेवाला माछीमार आगे चल कर अपने पारितोषिक का आधा भाग स्याल के हाथों में थमा दे यह नामुमकीन है ।।

अतः देवनागरी की अपेक्षा से दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में ही आन्तरिक सम्भावना दिखती है । ऐसा पाठ ही प्रामाणिक एवं मौलिकता के नज़दीक होगा । तथा जो पाठ मौलिकता के नज़दीक है वही पाठ प्राचीनतर भी सिद्ध होता है ।। देवनागरी वाचना के पाठशोधकों ने यह नया पाठान्तर सर्व प्रथम दाखिल किया है, अतः उसका अन्यान्य वाचनाओं में कहीं पर भी दर्शन नहीं होता है । मतलब कि इस दूषित पाठान्तर को जन्म देने में, पञ्चम क्रमांक पर खड़ी, केवल देवनागरी वाचना के पाठशोधकों का ही कर्तृत्व है ।।

इस नाटक की पाँचों वाचनाओं में मिल रहे विविध पाठान्तरों का इस तरह से तुलनात्मकअभ्यास करने से, काश्मीरी से शूरु हुई पाठयात्रा प्रथम मैथिली वाचना में संक्रान्त होकर, द्वितीय क्रम पर बंगाली वाचना में प्रवेश करती है । वहाँ से आगे बढती हुई यह पाठयात्रा चतुर्थ क्रम में दाक्षिणात्य वाचना में जाती है, और अन्त में देवनागरी वाचना में पहुँचती है ।।

उपर्युक्त चर्चा से हमारे सामने अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाठयात्रा का जो चित्र उपस्थित होता है उसको हृदयंगम करने के लिए निम्न भाग में दिया हुआ रेखाङ्कन देखना उपकारक होगाः----

अभिज्ञानशकुन्तला की पाठयात्रा

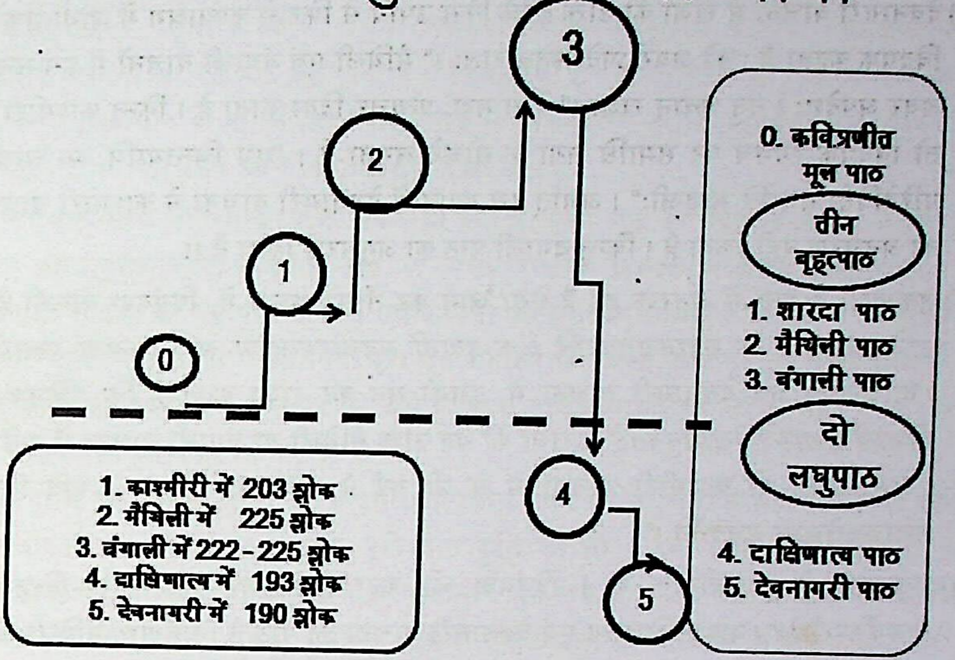

[7]

दाक्षिणात्य – देवनागरी पाठों में संमिश्रण:--- जैसा कि पहले कहा गया है इस नाटक की पाठयात्रा में जो पौर्वापर्य दिख रहा है तदनुसार दाक्षिणात्य वाचना का संक्षिप्त किया गया पाठ तो चतुर्थ क्रमांक पर आकारित किया गया है। तथा देवनागरी वाचना का पाठ पञ्चम क्रमांक पर बनाया गया है, और वह पाठ दाक्षिणात्य पाठ की अपेक्षा से संक्षिप्ततर भी है। यहाँ एक विशेष बात यह भी जोड़नी आवश्यक है कि इन दोनों वाचनाओं के पाठशोधकों ने कवि के बृहत्पाठ को न केवल संक्षिप्त ही किया है, किन्तु बृहत्पाठवाली तीनों पुरोगामिनी वाचनाओं में बिखरे विविध पाठान्तरों में से यथेच्छतया अलग अलग पाठान्तरों को स्वीकारे हैं। परिणामतः इन दोनों वाचनाओं को हम न केवल संक्षिप्त ही कहेंगे, उनको संमिश्रित पाठवाली वाचनाएँ भी कहेंगे ।। उदाहरणतया,

(क) प्रथमांक में, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठ में "तदिदानीं कतमत् प्रकरणम् आश्रित्यैनमाराधयामः ।"ऐसा वाक्य है। इसमें प्रकरण शब्द माना है। किन्तु यहाँ मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में "तत् कतमं प्रयोगमाश्रित्यैनमाराधयामः ।" ऐसा पाठान्तर मिलता है। अब दाक्षिणात्य वाचना में प्रकरण शब्द आता है, वह मूलभूत रूप से तो काश्मीरी वाचना में उपलब्ध होनेवाला पाठ है। अतःकहना होगा कि दाक्षिणात्यएवं देवनागरी वाचनाओं ने यहाँकाश्मीरी वाचना के पाठ को स्वीकारा है ।।

(ख) दाक्षिणात्य और देवनागरी वाचनाओं ने "न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्0" श्लोक का स्वीकार किया है। यह श्लोक मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में से लिया गया है।क्योंकि यह श्लोक काश्मीरी वाचना में नहीं है ।। (यद्यपि राघवभट्ट ने इस श्लोक पर टीका नहीं लिखी है।)

(ग) द्वितीयांक में, लघुपाठवाली वाचनाओं में विदूषक की उक्ति है कि "0 तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना" ।, किन्तु मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में तो "स्त्रीरत्नपरिभोगिनः" ऐसा पाठभेद

मिलता है। अतः यहाँ पर दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना ने जो पाठ स्वीकारा है वह काश्मीरी वाचनानुसारी है ।।

(घ) देवनागरी वाचना में राजा की उक्ति है कि किस उपाय से फिर से कण्वाश्रम में जाया सकता है ? तो विदूषक कहता है :"को अवरोऽपदेशस्तव राज्ञः ।" मैथिली एवं बंगाली वाचनों में इस सन्दर्भ में "कः अवर अपदेशः । ननु भवान् राजा ।" ऐसा सद्यः प्रत्युत्तर दिया जाता है। किन्तु काश्मीरी वाचना में तो विदूषक रंगमंच पर समाधि लगा के सोचने लगता है । "एष चिन्तयामि, मा खल्वस्यालीक-परिदेवितैः समाधिं भाङ्क्षीः" । अर्थात् इस स्थान में देवनागरी वाचना ने काश्मीरी वाचना के पाठ का अनुसरण नहीं किया है। किन्तु बंगाली पाठ का अनुसरण किया है ।।

(ङ) शकुन्तला दुष्यन्त में अनुरक्त हुई है ऐसा जान कर तीसरे अङ्क में, प्रियंवदा बोलती है *"सागरम् उज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति । क इदानीं सहकारमन्तरेण अतिमुक्तलतां पल्लवितां सहते ।"* दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना में, इसको सुन कर राजा कहते है कि *"किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते ।"* राजा की यह उक्ति मैथिली या बंगाली वाचना में नहीं मिलती है । ऐसी उक्ति तो काश्मीरी वाचना में से ली गई है । "किमत्र चित्रम् । यदि चित्राविशाखे शशाङ्कलेखाम् अनुवर्तेते ।"

(च) शकुन्तला ने (तृतीयांक में) प्रियंवदा को कहा है, *"हला, किमन्तःपुर-विरह-पर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन ।"* यह दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना का पाठ है। यह पाठ मैथिली और बंगाली वाचनाओं में मिलता है, अतः दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना वालों ने उसे वहाँ से स्वीकारा है। इन सब के प्रतिपक्ष में काश्मीरी वाचना में *"हला, अलं वोऽन्तःपुर-विहार-पर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरोधेन ।"* ऐसा सर्वथा भिन्न पाठ सुरक्षित है ।।

(छ) चतुर्थांक में, शकुन्तला-विदाय प्रसंग में (देवनागरी पाठ में) काश्यप मुनि ने शकुन्तला को ससुराल में कैसे रहना है उसका उपदेश करते हुए कहा है कि *"भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येषु अनुत्सेकिनी"*। यह पाठ काश्मीरी वाचना में से लिया गया है । उसके सामने मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में जो पाठ है वह, *"भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी"* है।

(ज) शकुन्तला पिता कण्व से पूछती है :*"कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतरुन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये ।"* इस तरह का दाक्षिणात्य एवं देवनागरी का पाठ मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में से लिया गया है । क्योंकि यहाँ जो काश्मीरी वाचना का पाठ है उसमें सर्वथा पृथक् उपमान मिल रहा है । जैसे कि, *"कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये ।"*

(झ) पञ्चमांक में, राजा ने गौतमी को कहा कि, *"तापसवृद्धे, स्त्रीणाम् अशिक्षितपटुत्वममानुषीषु .... अन्यै-र्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ।।"* तब उसको सुन कर शकुन्तला रोषपूर्वक कहती है :*"अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि"* इत्यादि । यहाँ दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना में दुष्यन्त को जो "अनार्य" शब्द से सम्वोधित किया है, वह मैथिली एवं बंगाली वाचना में से लिया गया है। क्योंकि काश्मीरी वाचना में ऐसा कोई सम्वोधन शकुन्तला ने नहीं किया है।

(ञ) राजा ने निष्ठुरतापूर्वक शकुन्तला का प्रत्याख्यान कर दिया । शकुन्तला रोने लगती है, तब गौतमी पूछती है :*"वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला । प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु ।"* दाक्षिणात्य एवं देवनागरी का यह पाठ काश्मीरी वाचना में से लिया गया

है। क्योंकि मैथिली एवं बंगाली पाठ में शकुन्तला को पुत्रिका शब्द से उल्लिखित नहीं की है। वहाँ तो *"प्रत्यादेश-पिशुने भर्तरि किं कुर्याद् तपस्विनी।"*ऐसा तपस्विनी शब्द रखा गया है।

(ट) षष्ठांक में, धीवर कहता है कि, *"0पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।"*दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना का यह पाठ काश्मीरी में से लिया गया है। काश्मीरी में भी श्रोत्रिय शब्द मिलता है। किन्तु इस स्थान में बंगाली वाचना के पाठ में *"पशुमारणं करोति दारुणमनुकम्पामृदुलः अपि सौनिकः।"* ऐसा परिवर्तन करके सौनिक शब्द रखा गया है।

(ठ) देवी वसुमती स्वयं वर्तिका-करण्डक लेकर आ रही है, ऐसा सुन कर विदूषक कहता है कि *"यदि भवान् अन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय।"*दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना का यह पाठ मैथिली एवं बंगाली प्राठों से प्रभावित है। मैथिली में देवी वसुमती के लिए "अन्तःपुरकूटपाश" शब्द दिया है। एवं बंगाली में "अन्तःपुरवागुरातः" शब्द मिलता है। किन्तु काश्मीरी वाचना में अन्तःपुर की देवी कुलप्रभा ईर्ष्याकषायिता होती ही नहीं है, और उसके लिए विदूषक ने कुछ कहा भी नहीं है ।।

इन उदाहरणों से इतना स्पष्ट होता है कि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना के पाठशोधकों ने कवि के मूल पाठ को संक्षिप्त कर देने के साथ साथ, पूरी नाट्यकृति का जो पाठसम्पादन किया गया है उसमें बृहत्पाठवाली तीनों पुरोगामिनी वाचनाओं में से पाठान्तर चुने गये हैं। जैसे कि, वे कुत्रचित् काश्मीरी वाचना में से संगृहीत किये गये हैं, अथवा कुत्रचित् मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में से अमुक पाठान्तरों को लिये गये हैं।कहने का तात्पर्य यह है कि देवनागरी वाचना न केवल संक्षिप्त की गई वाचना है, वह संमिश्रित की गई वाचना भी कहने योग्य है। हाँ, इसके साथ साथ यहाँ अनतिविलम्बेन यह भी कहना आवश्यक है कि देवनागरी वाचना के अज्ञात सम्पादक ने अपनी स्वतन्त्र सम्पादनदृष्टि भी कार्यान्वित की है। जिसके फल स्वरूप पञ्चम अङ्क का आरम्भ अन्य वाचनाओं से सर्वथा पृथक् ही है। एवमेव, षष्ठांक में अप्सरा का नाम सानुमती दिया है, जो काश्मीरी एवं मैथिली-बंगाली से भिन्न ही है। विस्तारभय से इस चर्चा को रोक लेते है। किन्तु कालिदास के इस महाने नाटक की दो हजार वर्षों के अन्तराल में जो पाठयात्रा चलती रही है उसका इस तरह का चित्र प्रथम बार सोचा गया है।। इति दिक्।।

[8]

कालिदास केस्थितिकाल से जुड़े विवाद का उन्मूलनः जैसे लिपिकार (लेखक)किसी भी पाण्डुलिपि का प्रतिलिपिकरण करता है तब वह प्रति का लेखनकाल, उसका मालिक कौन है या किसको पढने के लिए लिखा गया है ? इत्यादि की जानकारी भी ग्रन्थ की पुष्पिका में (अन्तभाग में) देता है। वैसे जो रंगकर्मी लोग होते हैं वे भी कदाचित् अमुक नाट्यप्रयोग किस मौके पर या फलाने राजा के दरबार में हो रहा है – ऐसी मंचन-विषयक जानकारी अपने प्रास्ताविक वक्तव्य में देता है। "अभिज्ञानशकुन्तल" शीर्षक से मैथिली वाचना का जो पाठ उपलब्ध होता है उसमें सूत्रधार के मुख में ऐसा वाक्य है कि, *रसभावविशेषदीक्षागुरोः साहसाङ्कस्य श्रीविक्रमादित्यस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। अस्यां च कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः* ।। (कुछ पाण्डुलिपियाँ ऐसी भी मिलती है कि जिनमें से "साहसाङ्कस्य" अथवा "विक्रमादित्यस्य" इस शब्द को हटाया गया है।) इसमें जिस साहसाङ्क उपनामधारी विक्रमादित्य का निर्देश हैवह दूसरा कोई नहीं है, वह तो चतुर्थ शताब्दि का, गुप्तवंशीय समुद्रगुप्त का पुत्र, चन्द्रगुप्त-2 है! बाणभट्टादि अनेक संस्कृत-ग्रन्थकारों ने हमें बताया है कि समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र, जिसका नाम रामगुप्त था,

वह शकों से पराजित हो गया था। किन्तु उसने राजलालसा के व्यामोह में, शकाधिपति से अपना राज्य वापस लेने के लिए अपनी पत्नी ध्रुवदेवी शकाधिपति को सोंप देने का सोदा किया था। इससे नाराज़ हुए उसका अनुज, चन्द्रगुप्त-2 ने स्त्रीवेष धारण करके, शकाधिपति की शिबिर में जाने का साहस करके, उसको मार डाला था[23]। (तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त-2 ने अपने बड़े भाई को भी मार कर, ध्रुवदेवी के साथ विवाह कर लिया था।) वही चन्द्रगुप्त-2 ने कालक्रम से उज्जयिनी तकअपना राज्यविस्तार भी किया था और विक्रमादित्य का बिरुद भी धारण किया था। तथा जनमानस ने उसको "साहसाङ्क" ऐसा भी विरुद दिया था। (उसके पिताजी समुद्रगुप्त अपने को "पराक्रमांक" बिरुद से उल्लिखित करते थे।) सारांशतः, मिथिला की पाण्डुलिपियों में जो "विक्रमादित्य" और "साहसाङ्क" शब्दों का विनिवेश हुआ है वह इस बात का सबूत बनता है कि अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का रंगमंचीय नवीन संस्करण चन्द्रगुप्त-2 की राजसभा में प्रस्तुत करने के लिए बनाया गया था, विद्वान् लोग आज जिसको "मैथिली वाचना का पाठ" कहते है॥

इससे अब सिद्ध होता है कि कालिदास कदापि गुप्तवंश में हुए ही नहीं थे। उनका स्थिति-काल तो शुंगवंश का काल, याने ई. सा. पूर्व प्रथम शती में ही है। तथा उनका अभिज्ञानशकुन्तला नाटक, जो क़ाश्मीरी वाचना से चला आ रहा था, उसमें भारी प्रक्षेप एवं परिवर्तन करके, नये (अभिज्ञानशकुन्तल) शीर्षक के साथ चन्द्रगुप्त-2 के सामने, अभिनीत (उस समय चन्द्रगुप्त-2 की राजसभा पाटलिपुत्र में थी, या उज्जयिनी में ? वह निश्चित नहीं हो सकता है।) किया गया होगा॥ मतलब कि, एक ओर मैथिली वाचना के पाठ में उपलब्ध हो रही ("साहसाङ्क विक्रमादित्य की अभिरूप भूयिष्ठा परिषद्"जैसे प्रकट शब्दों से विशेष प्रेक्षकवर्ग की उपस्थिति कहनेवाली) सूत्रधार की सूचना, तथा दूसरी ओर आख्यायिकाकार बाणभट्ट का "कामुक शकाधिपति को स्त्रीवेशधारी साहसाङ्क ने मार डाला था"ऐसा कथन– इससे सिद्ध होता है कि ई. सा. पूर्व प्रथम शती में लिखे गये इस नाटक का चतुर्थ शती में, मिथिला में नव संस्करण तैयार करके, साहसाङ्क विक्रमादित्य की राजसभा में वह खेला गया था !कुछ इतिहासविदों ने जो कहा है कि कालिदास गुप्तवंश के (चौथी या पाँचवी शती के) सुवर्णकाल में पैदा हुए थे, वह मतान्तर अब सर्वथा निरस्त हो जाता है॥ कालिदास का नाम विक्रमादित्य के साथ कैसे जुडा होगा ? इस प्रश्न का समाधान अब इस अभिनव अनुसन्धान से मिल रहा है कि जब उसके इस नाटक का नवीकृत मैथिली पाठ चन्द्रगुप्त-2 के समय में, अभिनीत किया गया था, तब वह प्रथम स्तर पर तो गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त-2 के साथ ही जुडे थे, जोभी विक्रमादित्य बिरुदधारी बना था। किन्तु द्वितीय स्तर पर, कुछ बंगाली एवं देवनागरी आदि पाण्डुलिपियों में से साहसांक शब्द को हटा कर, केवल विक्रमादित्य शब्द को संक्रान्त करना शुरू किया गया होगा तब कवि कालिदास को उज्जयिनी के विक्रम-संवत् प्रवर्तक आदि-विक्रमादित्य के साथ संयुक्त कर देना आसान हो गया !॥

[9]

अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की सभी वाचनाओं मेंरंगावृत्ति का ही पाठ है:कालिदास का यह नाटक सर्वाधिक लोकप्रिय है। क्योंकि यह नाटक नाट्यतत्त्व और काव्यतत्त्व जैसी उभयविध दृष्टि से बहुत आकर्षक

[23]द्रष्टव्य : " अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्च चन्द्रगुप्तः शकपतिम् अशातयत्। " और इस पर टीकाकार शङ्कर ने स्पष्टता करते हुए लिखा है कि " शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तस्य भ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीजनपरिवृतेन व्यापादितः। " हर्षचरितम् (उच्छवास – 3 के अन्त भाग में)

है । इन दोनों में भी काव्यतत्त्व इतना अधिक हृद्य और सुन्दर है कि इस नाटक की साहित्यशास्त्रीय समीक्षा करने में ही विद्वज्जगत् अभी तक रममाण रहा है । परन्तु इस नाटक का जो देवनागरी पाठ प्रचलित हुआ है उसकी नाटकीयता के सन्दर्भ में परीक्षा करने के लिए कोई उद्यत होगा तो उसे मालूम होगा कि यह प्रचलित पाठ तो निश्चित रूप से रंगावृत्ति ही है ! एवमेव, अन्यान्य वाचनाओं के पाठ में भी ऐसा ही दिखृ रहा है !। क्योंकि इस पाठ में जो रंसूचनायें हैं वह विसंगतता से भरी पड़ी हैं । अतः, इस नाटक के काव्यतत्त्वीय पक्ष को लेकर जो पाठान्तर दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उसकी अपेक्षा से नाट्य-तत्त्वीय पक्ष से जुडे पाठभेदों की पाठालोचना अनुपेक्ष्य है । यदि इस दिशा में कोई नाट्य-रसिक प्रवृत्त होगा तो आज प्रचलित हुए सभी वाचनाओं के पाठों में वहुशः परिवर्तन एवं संक्षेप-प्रक्षेप की लीलाओं का दर्शन जगह जगह पर होने लगेगा । तथा अन्ततो गत्वा, इस नाटक के मंचन का इतिहास भी दृश्यमान होने लगेगा!हमने इस नाटक की जिन पाँच वाचनाओं का निर्देश किया है, उनमें से एक भी वाचना का पाठ ऐसा नहीं दिखता है कि जिसमें कवि कालिदास के हाथों से लिखे गयेमूल पाठ का ही केवल प्रतिविम्ब सुरक्षित रहा हो । ये पाँचों वाचनाओं के पाठों में तो, अनेकत्र ऐसे प्रकट संकेत मिलते हैं कि इन सभी वाचनाएँ तो रंगकर्मिओं के हाथों से बनी"विविध रंगावृत्तियाँ" ही कहेने योग्य है । हमारे अभिमत की पुष्टि के लिए इस नाटक के तीसरे,चौथे एवं पाँचवे अंकोंकी दृश्यावली को निदर्श के रूप में लेंगे । यहाँ पाँचों वाचनाओं में जो जो परिवर्तन हुए दिख रहे हैं वे असंदिग्धतया मंचनलक्षी ही है:---

(क) **तृतीय अङ्क की दृश्यावली**:जैसा कि पहले बताया है काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम सिद्ध होता है । लिपियों के विकास का इतिहास बताता है कि शारदा-लिपि का जो समय है, तदनुसार उस काश्मीरी वाचना के पाठ को 7वीं शती का माना जायेगा । मतलब कि कालिदास के समय के सातसों वर्ष पश्चात् यह शारदापाठ परम्परा चल पडी होगी । अतः काश्मीरी वाचना के पाठ्यांश में जो परिवर्तित एवं प्रक्षिप्तांश यासंक्षिप्तीकरण का प्रभाव दिख रहा है, उन सब में केवल काश्मीरी रंगकर्मिओं का योगदान होगा या फिर ये सब दूषित पाठ्यांश उस वाचना को विरासत में मिला होगा ? यह निर्णयात्मक रूप से कहना मुश्किल है । अतः काश्मीरी वाचना के पाठ में जो कुछ परिवर्तित एवं परिवर्धित अंश के रूप में प्रदूषित भाग मिलते हैं, उसको पहचानने से आरम्भ करना होगा ।इन प्रदूषित भागों की पहचान करना मुश्कील नहीं है । नाटकीयता की दृष्टि से जो जो विसंगतियाँ दिख रही है उन सब का पहले परिचय कर लेंगे तो मूल पाठ्यांश में कहाँ से प्रदूषण दाखिल हुआ होगा वह समझ में आ ही जायेगा । तीसरे अंक में चार स्थानों की ओर हम विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे :--

(1) प्रियंवदा मदनसंतप्ता शकुन्तला के लिए नलिनीपत्र एवं उशीरानुलेपन ले जा रही है ऐसा प्रवेशक में कहा जाता है । ततः प्रथम दृश्य का आरम्भ होते ही कहा गया है कि शकुन्तला किसी एक शिलातल पर बिछाये कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है । दो सहेलियाँ उसको पवन झल रही हैं उसकी भी उसे मालूम नहीं है । इतनी गहरी कामदशा चल रही है । आगे चल कर उसने अपनी सखियों से कहा भी है कि आज दुष्यन्त के साथ उसका किसी भी तरह से मिलन नहीं करवाया जायेगा तो उसे भूल ही जाना पडेगा, वह केवल स्मर्तव्यशेष ही रह जायेगी ।। भरत मुनि ने रंगमंच पर शयन का निषेध किया था, या सुषिप्ति का ? उस विवाद में हम नहीं जाते है । किन्तु कालिदास ने शकुन्तला को रंगमंच पर लेटाई जरूर है यह स्पष्ट है ।अब रंगकर्मिओं के लिए स्थलकाल के अनुसार सामाजिकों की मानसिकता को देखते हुएइस दृश्य का मंचन एक चुनौती बन गया होगा ऐसा लगता है । क्योंकि शारदा पाण्डुलिपियों में से जो सब से

पुरानी भूर्जपत्र पर लिखी 192 क्रमांक की प्रति है उसमें तो शकुन्तला मदनलेख लिखते समय भी कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है और जब राजा उन तीनों सखियों के सामने रू-ब-रू होते हैं, तब भी वह लेटी ही रहती है। तत्पश्चात् दोनों सहेलियाँ मृगपोतक को उसकी माँ के पास पहुँचाने के बहाने वहाँ से चली जाती है और वह राजा के सान्निध्य में अकेली है तब भी लेटी हुई है। किन्तु इस सन्दर्भ मेंयदि पाँचों वाचनाओं के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा तो किसी एक वाचना ने मदनलेख लिखवाते समय, दो सखियों के सान्निध्य में, शकुन्ताल को रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था में ही रखवाई है। किन्तु दूसरी वाचना ऐसी भी है कि जिसने मदनलेख लिखने के वहाने ही उसे रंगमंच पर "आसीना चिन्तयति" या "उपविष्टा चिन्तयति" की स्थिति में प्रस्तुत करने का उपक्रम शुरू कर दिया है।। एवमेव, कहीं पर राजा के उपस्थित होते ही अनसूया की "शिलातलैकदेशम् अलङ्करोतु" की बिनती पर, शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त को बैठने के लिए अपने दोनों पाँव सिकुड लिया (पादौ अपसारयति) ऐसा कहा गया है। तो तीसरी वाचना में कहा जाता है कि राजा को बैठने की बिनती करते ही, वह लज्जा के साथ शिलातल से उठ कर पास में खडी रहती है। यहाँ "सलज्जा तिष्ठति" की रंगसूचना तो ठीक है। लेकिन आगे चल कर, दोनों सहेलियाँ मृगवाल को लेकर वहाँ से वाहर दूर चली जाती है और राजा उस खडी हुई शकुन्तला को जब कहते है कि "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।" (3-24) तब पुनः एक बार, मंचनलक्षी रंगसूचना दी जाती है कि "उत्थाय गन्तुमिच्छति"! अब जो नायिका राजा के आने पर ही सलज्जा खडी हो गई थी, उस के लिए कैसे "ऊठ कर जाने की इच्छा कर रही है" ऐसा कहा जा सकता है ?! यह प्रकट रूप से लिखी हुई विसंगति है। यह इस वात की गवाह देती है कि आज उपलब्ध हो रही सभी वाचनाओं के पाठ तो किसी न किसी नटमण्डली की रंगावृत्ति का ही पाठ है।।

(2) ऐसी ही दूसरी विसंगति की ओर देखिए :(क) नायक और नायिका के एकान्त मिलन की क्षणों का दृश्य किस समय आकारित किया गया है ? तो हमे कहा गया है कि प्रातः सवन पूरा होने के वाद यज्ञरक्षक दुष्यन्त को विश्राम का समय दिया गया है। वह प्रेक्षकों को कहता भी है कि, *"क्व नु खलु निरस्तविघ्नैस्तपस्विभिरनुज्ञातः खिन्नमात्मानं विनोदयामि। न च प्रियदर्शनाद् ऋते शरणमन्यत्। (ऊर्ध्वम् अवलोक्य) इमामुग्रातपां वैलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना तत्रभवती गमयति।।"* मतलब कि एकान्त मिलन का दृश्य मध्याह्न के समय में आकारित हो रहा है ऐसा स्वयं कवि ने ही कहा है। दोनों सहेलियों के चले जाने के बाद, दुष्यन्त जब उसके शरीर पर नलिनीदल का वृन्त लेकर पवन झलने की एवमेव अपनी गोदी में शकुन्तला के चरणों को लेकर उसका संवाहन करने की भी तत्परता दिखाता है, तब वह वहाँ से उठ कर चली जाने का अभिनय करती है। इस क्षण पर भी दुष्यन्त कहता है कि "सुन्दरि, अपरिनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था। उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणा। कथम् आतपे गमिष्यसि परिबाधाकोमलैरङ्गैः।।"(3-25) यहाँ पर पुनः एक बार कहा जाता है कि यह दृश्य मध्याह्न में चल रहा है। तथापि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठ में (उपर्युक्त वाक्य के बाद) केवल छह उक्तियाँ के बाद तुरंत नेपथ्योक्त से कहा जाता है कि "चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी।" यहाँ प्रश्न होता है कि अभी तो मध्याह्न का समय चल रहा है ऐसा नायक ने नायिका को कहा था, तो इतनी ही देर में कैसे रात्रि

उपस्थित हो गई ? । समयसूचक उक्तियों की इस तरह की विसंगति के सामने कुछ ऐसी भी वाचनाओं का पाठ है कि जिनमें अनुक्रम से मध्याह्न, सायंकाल और रजनी ये तीनों समयों का प्रकट निर्देश सुरक्षित रहा मिलता है ।इसका फलितार्थ यही हो सकता है कि जिन वाचनाओं में मध्याह्न के बाद तुरंत रजनी उपस्थित हो जाती है, उनमें से कुछ दृश्यों को हटाये गये होंगे । ऐसा सम्भव है, क्योंकि एक ही नाटक जब अल्प समयावधि में प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है, तब उसमें से कुछ भाग की कटौती भी की जाती है । ऐसी संक्षिप्त की गई आवृत्ति को ही तो रंगावृत्ति कहेते हैं ।। (ख) तीसरी बात यह भी ज्ञातव्य है कि जिन वाचनाओं के पाठों में मध्याह्न, सन्ध्याकाल और रजनी का निर्देश सुरक्षित रखा गया है, उनमें भी मूलगामी, अर्थात् कवि का मूल पाठ यथावत् स्वरूप में अक्षुण्ण या अक्षुब्ध रह पाया है ऐसा भी नहीं है । क्योंकि वहाँ पर भी पीढि दर पीढि संचरित हो कर हम तक पहुँचे पाठ में भी प्रक्षेपों का प्रदूषण दाखिल हुआ है ऐसा दिखता हैं । जैसे कि, काश्मीरी वाचना के प्राचीनतम पाठ में भी दो स्थान में अश्लिलता से भरे श्लोकों की प्राप्ति होती है । 1. शकुन्तला अपनी सहेलियों से कहती है कि तुमने जो उपचारातिक्रमण करते हुए लोकपाल को "बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते" इत्यादि कह दिया है, उसके लिए क्षमा-याचना कर लो । तो सखियों ने कहा कि तुमने ही पहले राजा के लिए बोला था कि *"हला अलं वो अन्तेउर-विहार-पय्युसुएण राएसिणा उवरुद्धेण ।"*(राजा तो अन्तःपुर में विहार करने के लिए पर्युत्सुक हो रहा है, उसको रोकने से क्या फायदा ?।) इस लिए तुम शकुन्तला ही राजा की माफी माँगलो । सहेलियों की इस तरह की बहस के दौरान दुष्यन्त ने बोला है कि,

"अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु तवाङ्गसंगे (0सृष्टे) ।
कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे स्वजन-त्वादनुमन्यसेऽवकाशम् ।। (3-23)" ।

यहाँसहेलियों की उपस्थिति होते हुए भी राजा ने शकुन्तला के साथ सहशयन की सीधी मांग की है । बात यहीं पर नहीं रुकती है । राजा की मांग को सुन कर प्रियंवदा कहती है कि, "राजन् ! हमारी सखी को इतने से संतुष्टि नहीं होगी !" रंगमंच पर ऐसी अश्लिल मजाक-मस्ती अनुचित है । दुष्यन्त-शकुन्तला जैसे अभिजात नायक-नायिकाके बीच ऐसी बातचीत सर्वथा अमान्य है ।। उसी तर से, 2. आगे चल कर दोनों सहेलियाँ जब रंगमंचसे निकल जाती है तब राजा की एक स्वगतोक्ति आती है :--

अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतीपाः,
काङ्क्ष्यन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने ।
आबाध्यन्ते न खलु मदनेनापि लब्धान्तरत्वाद्,
आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः ।। (3-26)

(शकुन्तला गच्छत्येव)

राजा– कथमात्मनः प्रियं न करिष्ये ।।

यहाँ पर जो शब्द सुनाई दे रहे हैं, उनके अर्थानुसार तो लगता है कि अब आगामी क्षणों में दुष्यन्त रंगमंच पर ही बलात्कार से कुछ कम नहीं करेगा ।। लेकिन आश्चर्यजनकतया ऐसा तो कुछ होता नहीं है । इस पूरी संवाद शृङ्खला को सुन कर लगता है कि इतना अंश प्रक्षिप्त ही होगा । तथा ये सभी उक्तियाँ परापूर्व से चली आ रही होंगी, जो काश्मीरी वाचनाको विरासत में मिली होगी । क्योंकि उसके पीछे तो शूरु होता है नायक-नायिका का बिलकुल स्वाभाविक सहज सुंन्दर प्रेमसहचार ! जिसमें दुष्यन्त

शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहेनाता है। तथा शकुन्तला के नेत्र पुष्परज से कलुषित होने पर दुष्यन्त अपने वदनमारुत से उसको प्रमार्जित कर देता है। इस घटना का दो दृश्यों में विस्तार है। इस तरह से, नायक-नायिका के मिलन में शूरु में ही आये हुए दो अश्लिल श्लोक, तथा वहीं पर उत्तरवर्ती भाग में दिखाई देता प्रेमीयुगल का सहज सुन्दर प्रेमसहचार– इनपूर्वापर विरोधी दोनों दृश्यों को देखते हुए सिद्ध हो जाता है कि यहाँ जो दो अश्लिल श्लोक एवं उसके आगे पीछे जुडी अन्य जो गद्य उक्तियाँ हैं, वे निश्चित रूप से किसी अज्ञात रंगकर्मी के हाथ का कसब है, प्रक्षिप्त पाठ्यांश है ।। यहाँ पुनरुक्ति के साथ कहना आवश्यक है कि पूर्वनिर्दिष्ट श्लोक केवल अश्लिल या सुरुचि का भङ्ग करनेवाले होने मात्र से हमने उसे प्रक्षिप्त नहीं कहे हैं, नहीं कह सकते हैं। क्योंकि ऐसा भी नहीं है कि हमारे कवि अश्लिल या शृङ्गारातिरेक से भरा काव्य लिखते ही नहीं है। कुमारसंभव में उन्होंने शिव-पार्वती के संभोग शृङ्गार का जो वर्णन किया है उसमें किसी पाठक की सुरुचि का भङ्ग हो ऐसा बहुत कुछ लिखा ही है। अतः केवल अश्लिल होने से हम किसी पद्य को प्रक्षिप्त नहीं कह सकते है। किन्तु यहाँ जो दो दृश्य आगे पीछे मिलते हैं वे दोनों परस्पर में विरोधी है। अतः प्रक्षिप्त मानना पडेगा, जोकिसी रंगकर्मी का कर्तृत्व है ।। सारांशतः एक ओर लघुपाठवाली दोनों वाचनाओं में संक्षेप हुआ है, तो दूसरी ओर बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में प्रक्षेप हुआ है। अतः पाँचो वाचनाओं के पाठ को रंगावृत्ति का पाठ कहना होगा ।।

(3) तीसरे अंक के अन्तिम दृश्य की प्रस्तुति भी दो-तीन तरह की दिखती है :1. काश्मीरी वाचना में शकुन्तला के लिए यज्ञशाला का शान्त्युदक लेकर लतावलय के पास आ पहुँचती है।तो वहाँ पर पहेरा दे रही दो सहेलियों में से किसी ने नेपथ्य से आवाज दी कि "आर्या गौतमी", जिसको सुनते ही शकुन्तला ने राजा को विटपान्तरित हो जाने को कह दिया। गौतमी वहाँ लतावलय में आती है, शकुन्तला को अकेली, बिना सखियों के सान्निध्य में, देखती है। और वह शकुन्तला को लेकर रंगमंच से बाहर चली जाती है। इसमें काव्यात्मक परिवर्तन करके, 2. मैथिली वाचना के पाठशोधकों ने नेपथ्य से जिस उक्ति का उच्चारण करवाया है, उसमें बोला जाता है कि, "चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी ।", जिसको सुन कर शकुन्तला ने उसका व्यङ्ग्यार्थ समझ लिया कि गौतमी आ रही है। यहाँ बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में रंगमंच पर दोनों सहेलियाँ किसी भी तरह से प्रकट नहीं होती है। (इस तरह के मैथिली पाठ का बंगाली वाचना में अनुसरण किया गया है।) 3. परन्तु जब लघुपाठवाली दोनों वाचनाओं के पाठ को देखा जाता है तो मालूम होता है किनेपथ्योक्ति से "चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी ।" ऐसा बोला तो जाता है, और उसको सुन कर शकुन्तला सावधान हो जाती है। राजा को वृक्ष के पीछे गुप्त होने का कहती भी है। लेकिन, अब गौतमी को लेकर दोनों सहेलियाँ भी "इतः इतः" बोलती हुई, गौतमी को मार्गदर्शन कराती हुई रंगमंच पर प्रवेश करती है। तत्पश्चात् वे तीनों ही शकुन्तला को लेकर वहाँ से निकल जाती है ।। पहली (काश्मीरी की) दृश्य-योजना में नेपथ्य से जो "आर्या गौतमी" शब्दों से आवाज दी जाती है,तो प्रश्न होता है कि क्या गौतमी ने इन शब्दों को सुन कर उसको बोलनेवाला कौन है ? वह नहीं पहचाना होगा ? ।. दूसरी (मैथिली की) दृश्य-योजना में जिस चक्रवाकवधू का प्रतीकात्मक विनियोग किया गया है, वह प्रसंगानुरूप और अधिक रमणीय प्रतीत

होता है । तीसरी (दाक्षिणात्य वाचना की) दृश्य-योजना में मैथिली वाचना के शब्दों का अनुसरण होते हुए भी, गौतमी को लेकर दोनों सहेलियों का रंगमंच पर आना ठीक नहीं लगता है । क्योंकि, ऐसा होने पर भी क्या गौतमी उन दोनों को प्रश्न नहीं कर सकती है कि तुम दोनों ने इस शकुन्तला को अकेली क्यूं छोड दी थी ।। इन तीनों तरह की दृश्य-योजनाओं में गुणदोष की कम-ज्यादा मात्राएँ देखी जा सकती है । अमुक एक वाचना की दृश्य-योजना में ही कालिदासीय संस्पर्श है – ऐसा कहना मुश्किल एवं विवादास्पद भी होगा । अतः इन सब को रंगकर्मिओं की लीला ही कहना उचित प्रतीत होता है ।।

(ख) चतुर्थ अङ्क की दृश्यावली:पुराने जमाने में साहित्यरसिकों ने कहा है कि काव्यों में नाटक उत्तम है, नाटकों में भी अभिज्ञानशाकुन्तल उत्तम है । उसमें भी चौथा अङ्क सब से उत्तम है, और उसमें भी अमुक चार श्लोक श्रेष्ठ है । इस तरह के मूल्याङ्कन में भी अन्ततो गत्वा उसके काव्यपक्ष की ओर ही ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है । लेकिन मंचनपक्ष को लेकर चतुर्थाङ्क की दृश्यावली में देखा जायेगा तो उसमें भी पाठान्तरों की बहुविधता हमें उलझन में डाल देती है कि कवि ने मूल में दृश्य-योजना कैसी सोची होगी । अतः इनके आधार पर इन पाठपरम्पराओं को वाचनाभेद का नाम न देकर, रंगावृत्तियों का वैविध्य ही कहना होगा जैसे कि,

(1) चतुर्थाङ्क के आरम्भ में दुर्वासा के शाप का प्रसंग रखा गया है । दो सखियाँ पुष्पावचयन का अभिनय करती है । उन दोनों की बातचीत में शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह पिता जी को मान्य रहेगा कि नहीं ? वह चिन्ता का विषय है । 1. यहाँ पर काश्मीरी पाठ में प्रियंवदा की जो उक्ति है, वह मैथिली में अनुसूया की उक्ति के रूप में रखी गई है । 2. एवमेव, आश्रम के प्राङ्गण में कोई अतिथि आकर खडा है ऐसा बोध होने पर "आज शकुन्तला उटज में होते हुए भी हृदय से असंनिहित है" ऐसा वचन प्रियंवदा का है कि अनुसूया का है ?एवमेव, वह किसी की स्वगत उक्ति है या फिर प्रकाशोक्ति है ?उस विषय में सभी वाचनाओं के पाठ में एकरूपता नहीं है । 3. दुर्वासा ने जब शाप दे दिया तब उनके पास जाकर, शापमोचन की विज्ञप्ति कौन करती है ? किसी एक पाठ में वह कार्य अनसूया करती है, तो दूसरे पाठ में वह कार्य अनसूया प्रियंवदा को सोंपती है । (इसमें भी, क्रुद्ध दुर्वासा को जाते हुए देखा है अनसूया ने कि वह किस दिशा की ओर गये हैं, फिर भी वह भेजती है प्रियंवदा को !) 4. शकुन्तला को शाप लग गया है इस खतरनाक बात को (पिताजी से) एवं शकुन्तला से छिपा कर रखने का प्रस्ताव मूल में अनसूया का था या प्रियंवदा का ? उसमें भी सभी वाचनाओं में एकमति नहीं है । 5. कुछ अधिक पुष्पों का चयन इसलिए करना था कि शकुन्तला को सौभाग्यदेवता की पूजा-अर्चना करनी थी, ऐसा दृश्य के आरम्भ में कहा गया है । फिर भी, मैथिली वाचनामें कहा गया है कि, वे दोनों सहेलियाँ ही देवताकार्य का निर्वर्तन करने के लिए चल पडती है !(दृश्य के आरम्भ में सौभाग्यदेवता है, लेकिन आगे चल कर वह देवकार्य के नाम से अभिहित किया जाता है) यहाँ रंगकर्मिओं के लिए जो अभिनयलक्षी तकादा था वह उद्यान से निकल कर उन दोनों को उटज पर पहुँचाना था । याने दो स्थलों के बीच का मार्ग-परिक्रमण दिखलाना था । अब,बिना बातचीत करते हुए वे दोनों रंगमंच पर कैसे चलती रहेगी ? ऐसा सोच कर किसी (मैथिली) रंगकर्मी ने अनुसूया के मुख में "एहि, देवकार्यं तावत् निर्वर्तयावः । (इति परिक्रामतः ।)"ऐसे वाक्य का प्रक्षेप कर दिया, तथा उसीके साथ, वहीं रंगमंच पर गोलाकार में परिक्रमण करने की सूचना भी दी गई । यह एक अधिक उक्तिके प्रक्षेप होने के कारण अनुगामिनी उक्तियों के वक्तृ-व्यक्ति बदल जाते हैं! परिणामतः काश्मीरी वाचना में शापगुप्ति का प्रस्ताव जो प्रियंवदा का था, वह अब अनसूया का

हो जाता है ! इस तरह से किसी एक पात्र की कुशलता, चतुराई या चाञ्चल्य किसी दूसरे व्यक्ति में आरोपित हो जाती है ।।

(2) निसर्ग-कन्या शकुन्तला चतुर्थाङ्क में अपने ससुराल जाती है ।शकुन्तला इस बात से संतप्त है कि वह करिसार्थ से परिभ्रष्ट हुई करेणुका जैसी पिता के सांनिध्य विना अकेली पतिगृह में कैसे प्राणधारण कर सकेगी । तब पिता कण्व ने दो बातें कही हैं । 1. कुलीन व्यक्ति के घर में गृहिणी का पद प्राप्त करके नवीन कामकाज में व्यस्त हो जाओगी । तथा अचिरेण पुत्र का जन्म होने पर तुम मेरे विरह का दुःख भूल जाओगी । 2. दूसरा ध्यातव्य विन्दु यह भी है कि कदाचित् ऐसा वृत्तान्त सुनने को मिल जाय कि अब पिता कण्व नहीं रहे, तो दुःखी होना नहीं है । क्योंकि शरीर और शरीरी का वियोग तो होनेवाला ही है । जैसे कोई नट नाट्यप्रयोग पूर्ण होने पर अपना आहार्य (मुकुटादि) निकाले समय विषादग्रस्त नहीं होता है ।। इन दोनों बातों के लिए कण्व के मुख में दो श्लोक रखे गये हैं,जो काश्मीरी और मैथिली वाचनाओं में उपलब्ध होते हैं । जैसे कि, (1) अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणी पदे0 । तथा (2) यथा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि । आहार्ययोगेन वियुज्यमानः परेण को नाम भवेद् विषादी ।। (यद्यपि बंगाली वाचना के आधुनिक सम्पादकों ने,डॉ. रिचार्ड पिशेल एवं डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल ने इस दूसरे श्लोक को अमान्य किया है । परन्तु वंगाली पाठ के प्राचीन टीकाकार चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने उसको मान्य रखा है ।) किन्तु लघुपाठवाली दोनों वाचनाओं में उसको निकाल दिया गया है । परिणामतः मंचन के समय में जो भावसृष्टि की, याने सात्त्विकाभिनय की संकल्पना कवि ने की होगी वह बदल गई है ।।

(3) इसी तरह से, काश्मीरी वाचना में कन्या-विदाय की क्षणों में कण्व मुनि क्षीरवृक्ष की छाया में बैठ कर सोचते है कि जामाता दुष्यन्त को कौन सा सन्देश पहुँचाना उचित रहेगा ? वे जू तक सोचते है तब तक तीन सखियों के वीच एक नाजुक संवाद होता है । अनसूया कहती है कि शकुन्तलाइस आश्रम में आज ऐसा कोई नहीं है कि जो तेरे विरह में उत्सुक न हुआ हो । तुम ही देख, "पुटकिनीपत्रान्तरितं व्याहृतोऽपि, न खलु व्याहरति प्रियाम् । मुख उद्व्यूढमृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः ।।"चकवी के द्वारा बुलाये जाने पर भी चकवा अपनी प्रिया को प्रत्युत्तर नहीं देता है । चकवा यद्यपि बहुत दूर तो खडा नहीं था, वगल में हि केवल नलिनीपत्र के पीछे ही खडा था । किन्तु वह तो मुख में मृणालदण्ड उठाये हुए ही खडे खडे पतिगृह को जा रही शकुन्तला को देख रहा था ।। अनसूया के ऐसा कहने पर शकुन्तला उस पक्षिओं की मूकभाषा समझ लेती है और कहती है कि "सखि, सत्यमेव, नलिनीपत्रान्तरितं प्रियसहचरम् अनवेक्षन्ती आकुला चक्रवाकी आरटति । (सत्रासम्) दुष्करं खलु अहम् करोमि ।।"शकुन्तला ने निसर्ग में से जो मार्मिक बात समझ ली थी और उससे संतप्त हो उठी थी, उसको देख कर अब प्रियंवदा सखी को आश्वासन देती हुई बोलती है :"एषापि प्रियेण विनी गमयति रजनीं विसूरणादीर्घाम् । गुर्वपि विरहदुःखम् आशावन्धः साहयति ।।" तीनों सहेलियों के बीच में हुआ इतना हृदय-द्रावक संवाद काश्मीरी और मैथिली वाचनाओं में ही मिल रहा है । लेकिन वंगाली वाचनाके पाठ में कुछ विकृत परिस्थिति दिखती है । क्योंकि उसमें इस अंश की कटौती हुई दिखती है । सम्भव है कि वहाँ की रंगभूमि के कलाकारों की दृष्टि से इस दृश्य में अभिनयन की क्षमता न हो । लेकिन पूर्वोक्त पाठ्यांश में से शकुन्तला और प्रियंवदा की उक्तियों के अंश को निकाल देने से उपरि निर्दिष्ट प्रसंग की मार्मिकता को हानि पहुँचे विना रहती नहीं है । अतः वर्तमान में उपलब्ध हो रहे बंगाली पाठमें स्पष्टतया विकृति दिखती है ।। एवमेव, जव दाक्षिणात्य प्रदेशों की रंगभूमि पर इस नाटक के पाठ में भारी कटौती की गई तब बंगाली पाठ से तद्दन विपरीत स्थिति उपलब्ध होती है । लघुपाठ की वाचनाओं के पाठ में अनसूया की प्रथम उक्ति को हटाई गई है,

किन्तु शकुन्तला और प्रियंवदा की उक्ति को यथावत् रखी गई है । याने इस लघुपाठ के रंगकर्मिओं ने भी संक्षेपीकरण का लक्ष्य रखने के साथ साथ प्रसंग की मार्मिकता को बरकरा रखी है ।।

(ग) पञ्चम अंक की दृश्यावली में मंचनलक्षी परिवर्तनों को यदि देखा जाय तो पहले ही दृश्य में त्रिविध बदलाव उपलब्ध होते है । एवमेव, शकुन्तला-प्रत्याख्यान के दृश्य में भी द्वैविध्य है । तद्यथा,

(1) पञ्चम अङ्क का आरम्भ किसकी उक्ति से होता है ? इस प्रश्न को लेकर यदि बृहत्पाठ की तीनों वाचनाओं का तुलनात्मक अभ्यास किया जाय तो मालूम होता है कि इन सव का आरम्भ तो कञ्चुकी की उक्ति से होता है । तथापि उसमें बहुत अन्तर है । जैसे किअनुसार कञ्चुकी की उक्ति आदि से अन्त काश्मीरी वाचना के , तक एकल उक्ति के रूप में नहीं हैवह बीच में आकाशोक्ति का भी आश्रयण करता ,)– है । जिससे वह मौद्गल्य नामक किसी परिजन से बात करता है । तद्यथा *तद्देवस्य तदावेदयितुमिच्छामि ,धर्मकार्यम् अनतिपात्यम् ,मौद्गल्य (परिक्रम्याकाशे किं ब्रवीषि । नन्विदानीमेव धर्मासनाद् उत्थितः पुनरुपर ।ुध्यते देव इति । न त्वीदृशो लोकतन्त्राधिकारः । पश्यकिं ,(3 – 5) ... 0 भानुः सकृद् युक्ततुरङ्ग एव , अनुष्ठीयतां नियोग इति ।। ,ब्रवीषि । तेन सङ्गीतकशालासङ्गतं मण्डपं गच्छ मनुः प्रजास्स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना यावत् तत्र गच्छामि । एष देवः । विविक्तम् (4 – 5) ।। 0।।* इस तरह की प्रस्तुति में स्पष्ट रूप से नाटकीयता आती हैलेकिन मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ में ऐसी प्रस्तुति नहीं है । यहाँ पर , गीत का दृश्य -रन्त हंसपदिकाकञ्चुकी के मुख में रहे केवल तीन श्लोकों के बाद तु शुरू हो जाता है । जिससे रंगमंच पर कञ्चुकी की उक्तियों का अति विस्तार होता ही नहीं है । मैथिली एवं बंगाली में कञ्चुकी की उक्ति मेंबीच में आकाशोक्ति का , आश्रयण नहीं लिया गया है । तथा कञ्चुकी के चार श्लोकों के बाद भी जब राजा षक का रंग पर प्रवेश होता है तब तुरन्त हंसवती का गीत प्रस्तुत नहीं और विदू होता है । इन दोनों में तो पहले राजा अपने अधिकारखेद व्यक्त करने लगता है । जिसको दूर करने के लिए वैतालिकों का गान आरम्भ होता है । इस तरह से मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में सात श्लोकों के प्रस्तार में ग्लानिपूर्ण दृश्य का एक समान निरूपण होता रहता हैजो प्रेक्षकों एवं पाठकों को कोई नये कौतुक में आबद्ध नहीं , कर पाता है । अर्थात् कहने का तात्पर्य यही है कि काश्मीरी वाचना के पाठ में जो वैविध्य के साथ नाटकीयता उभर कर सामने आती हैमें वह अन्य दो वाचनाओं , नहीं है ।।

उपर्युक्त समस्या की जड़ इस बात में है कि बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में हंसपदिका के गीत एवं दो वैतालिकों के श्लोकगान का विनियोग किस आशय से किया जाय ? इसमें मतभेद रहा होगा । गहेराई में जा कर इस विषय की चर्चा करने के लिए इस प्रसंग से सम्बद्ध मैथिली (एवं तदनुसारिणी बंगाली) वाचना का पाठ देखना चाहिए :--

कञ्चुकी– (निःश्वस्य) अहो बत कीदृशीं वयोवस्थामापन्नोऽस्मि ।

आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।

...... (5 – 1) ।।

यावदभ्यन्तरगताय देवाय स्वयमनुष्ठेयम् अकालक्षेपार्हमावेदयामि । किं पुनस्तत् । आं ज्ञातम् । कण्वशिष्यास्तपस्विनो देवं द्रष्टुमिच्छन्ति । भोः चित्रमेतत् ।

क्षणात् प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः ।

निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः ।। 5 – 2 ।।

(दृष्ट्वा) एष देवः,

प्रजाः प्रजाः स्वा इव चिन्तयित्वा0 ।। 5 – 3 ।।

यत्सत्यं शङ्कितोऽस्मि इदानीमेव ***धर्मासनादुत्थिताय देवाय*** कण्वशिष्यागमनं निवेदयितुम् । अथवा कुते विश्रामो लोकपालानाम् ।

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव0 ।। 5 – 4 ।। (इति परिक्रामति)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकः विभवतः परीवारः ।)

राजा– (अधिकारखेदं निरूप्य) सर्वः प्रार्थितार्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते । राज्ञः चरितार्थता दुःखोत्तरैव । कुतः –

औत्सुक्यमात्रम् अवसादयति प्रतिष्ठां0 ।। 5 – 5 ।।

(नेपथ्ये) वैतालिकौ – जयति जयति देवः ।

एकः – स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः0 ।। 5 – 6 ।।

द्वितीयः – नियमयसि विमार्गप्रस्थितान् आत्तदण्डः0 ।। 5 – 7 ।।

राजा– (आकर्ण्य) *आश्चर्यम्, कार्यशासनपरिश्रान्ताः पुनर्नवीभूता स्मः ।*

विदूषकः– गोविन्दारको त्ति किल भणिदस्स रिसभस्स परिस्समो णस्सदि ।

राजा– (सस्मितम्) क्रियताम् आसनपरिग्रहः ।

(उभावुपविष्टौ परिजनश्च यथास्थानं स्थितः)

(नेपथ्ये वीणाशब्दः)

इस तरह के पाठ से स्पष्टतया ऐसा चित्र उपस्थित होता है कि जो राजा दुष्यन्त राजकार्यों से परिश्रान्त हुआ था, उसका परिश्रमविनोदन करने के लिए वैतालिकों के श्लोकगान को रखा गया है । शकुन्तला प्रत्याख्यान का प्रसंग तो अभी दूर है । क्योंकि वैतालिकों के गान और शकुन्तला-प्रत्याख्यान के बीच में तो अभी हंसवती का गीत आना बाकी है । अतः ऐसा फलित होता है कि शकुन्तला-प्रत्याख्यान, जो इस पञ्चम अङ्क की केन्द्रवर्तिनी घटना है, उसके साथ तो इस वैतालिकों के श्लोकगान का कोई सम्बन्ध ही नहीं है । अतः इस तरह की मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं की पाठयोजना कालिदास की मौलिक पाठयोजना नहीं हो सकती, यह तो उस प्रान्त के अज्ञात रंगकर्मियों के हाथों का ही कसव है ऐसा अनुमान होता है ।।

तथापि यहाँ यह भी विचारणीय है कि, तो फिर मिथिला एवं बंगाल के रंगमंच पर किस दृष्टि से इस पाठयोजना को स्थान दिया गया होगा ? इसका उत्तर कञ्चुकी के लम्बे वक्तव्य में से मिलता है । चतुर्थाङ्क के अन्त में प्रेक्षकों ने सुना है कि शकुन्तला को लेकर कण्वशिष्यों ने

हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया है, अतः पञ्चम अङ्क के साथ उसका अनुसन्धान बिठाने के लिए कञ्चुकी कहता है कि "कण्वशिष्यास्तपस्विनो देवं द्रष्टुमिच्छन्ति" । और, चतुर्थाङ्क के आरम्भ में आये हुए दुर्वासा के शाप से दुष्यन्त की स्मृति विलुप्त हो गई है उसका प्रतीकात्मक निर्देश करने के लिए भी कञ्चुकी के वक्तव्य का उपयोग किया गया है । जैसे कि, वह बुढापा से आक्रान्त है और उसकी स्मृति भी बीच बीच में लुप्त हो जाती है । उसने कहा है *:क्षणात्प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः । निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः ॥* अर्थात् मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठशोधकों ने सम्भवतः जिन दो दृष्टिकोणों से उपर्युक्त पाठयोजना बनाई होगी वह हैः-- 1. चतुर्थाङ्क के साथ पञ्चमाङ्क का अनुसन्धान प्रस्थापित करना । एवं 2. दुष्यन्त की स्मृति शापग्रस्त हुई है उसकी ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति करना । लेकिन इस तरह की पाठयोजना में वैतालिकों के श्लोकगान का कोई विशेष महत्त्व रहता नहीं है, अथवा कहो कि उन श्लोकों का प्रयोजन बहुत आकर्षक सिद्ध नहीं होता है यह बात जरूर खटकती है ॥

उसके प्रतिपक्ष में याने काश्मीरी वाचना के पाठ में, वैतालिकों के गान का जो उपस्थितिक्रम सोचा गया है वह भी परीक्षणीय है । उसमें कञ्चुकी के वक्तव्य के बाद पहले हंसपदिका का गीत आता है, जिसके अनुसन्धान में विदूषक को रंगमंच से निवृत्त किया जाता है । और दुष्यन्त *"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्0"* शब्दों से जननान्तर के किसी अज्ञात सौहृद को याद करने का विफल प्रयास करता हुआ पर्याकुलित होता है । ऐसी उद्विग्नता से भरी मनोदशा के दौरान यदि कण्वशिष्यों का आगमन हो, और वे लोग शकुन्तला को उसकी पत्नी के रूप में स्वीकार करने का कहे तो नायक उसका प्रत्याख्यान सरलता से कर ही नहीं सकता था । अतः पहले उसकी धर्मबुद्धि को प्रखरता का पाश चढ़ाना आवश्यक लगता है, जिसके लिए वैतालिकों का गान उपकारक सिद्ध होता है । यहाँ वैतालिकों का गान राजकार्यों से परिश्रान्त हुए राजा को नवीकृत करने के लिए नहीं है, वह तो पर्याकुलित (क्लान्त) मनवाले नायक को नवीकृत करने के लिए प्रयुक्त होते है । जिसके द्वारा शकुन्तला का दृढता के साथ अस्वीकार करने को उसकी नैतिक एवं धर्मबुद्धि पूर्ण रूप से जागृत हो उठती है । कहने का तात्पर्य यही है कि जैसे मैथिली एवं बंगाली पाठ में वैतालिकों का गान राजकार्यों के परिश्रम को दूर करने जैसे मामूली आशय से प्रस्तुत होता है, उससे कईं अधिक बहेतर आशय से वह काश्मीरी पाठ में प्रयुक्त होता है । हंसपदिका गीत के श्रवण से नायक के हृदयाकाश में जो जननान्तर का सौहृद असंप्रज्ञात मानस में से संप्रज्ञात मानस में आने की कोशिश करता है, उसकी महिमा इतनी उत्तुङ्ग है कि उसको यदि धर्मबुद्धि के पाश में जकड़ा नहीं गया होता तो दुष्यन्त के लिए शकुन्तला का प्रत्याख्यान करना असम्भव सा लगता है । इस दृष्टि से देखेंगे तो काश्मीरी वाचना में इस प्रसंग का जो पाठक्रम पाण्डुलिपियों के माध्यम से संचरित होकर हम तक आया है उसके पीछे गम्भीर आशय रहा है ऐसा प्रतीत होता है । उसके सामने मैथिली एवं बंगाली पाठ में, पहले वैतालिकों के गान का विनियोग (उपर्युक्त मामूली आशय के लिए) कर लेने से, दूसरे क्रम में जब हंसवती का गीत नायक को सुनाया जाता है तब आगे चल कर शकुन्तला का प्रत्याख्यान करना विकट, या कदाचित् असम्भव ही था ऐसा लगता है । इस विचारधारा से सोचा जायेगा तो काश्मीरी वाचना के पाठक्रम में ही नाटकीयता सर्वांश में चमक उठती है ॥

यहाँ देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं को देखने से मालूम होता है कि रंगकर्मिओं ने इस प्रसंग का मंचन करने के लिए एक तीसरी रीति भी सोची है । जिसमें, अङ्क का आरम्भ

कञ्चुकी की उक्ति से नहीं होता है, किन्तु हंसपदिका के गीत से ही सीधे दृश्यारम्भ होता है। (इस तरह की प्रस्तुति काश्मीरी वाचना के पाठ के साथ बहुत कुछ साम्य रखती है। इस दृष्टि से भी काश्मीरी वाचना के पाठक्रम का समर्थन हो रहा है, वह उल्लेखनीय है।)। लेकिन देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं का पाठ पश्चाद्वर्ती काल में संक्षिप्त किया गया पाठ है (ऐसा हमने अन्यत्र सिद्ध किया है), इस लिए इसमें निरूपित किया गया पाठक्रम उत्तरवर्ती काल का ही होगा यह बात पुनरुक्त करने की आवश्यक नहीं है ।।

अभी तक विद्वानों ने काश्मीरी वाचना के सप्तमाङ्क में आये हुए प्रवेशक को, जिसमें दो नाकलासिकाओं का नृत्य प्रस्तुत होत है, उसको ही इस वाचना की एकमात्र नीजी पहचान देनेवाला दृश्य माना है[24]। किन्तु इनके साथ साथ यह भी कहना आवश्यक है कि अभिज्ञानशकुन्तल के पञ्चमाङ्क का पाठ अपने मौलिक स्वरूप में यदि कहीं पर भी सुरक्षित रहा हो तो वह केवल काश्मीरी वाचना के पाठ में ही रहा है। जिसमें कञ्चुकी की उक्ति का उपर्युक्त स्वरूप एवं हंसपदिका-गीत एवं वैतालिकों का गान प्रस्तुत करने का जो क्रम निर्धारित किया गया है, या अपना मूल रूप सुरक्षित रख कर हम तक पहुँचाया है वह भी उसकी एक अद्वितीयता है ।।

चूँकि मैथिली एवं बंगाली वाचना में हंसवती के गीत-प्रसंग के पूर्व में वैतालिकों का श्लोकगान होता है ऐसा पाठक्रम निर्धारित किया गया है, और उस समय दुष्यन्त के साथ में विदूषक मौजुद रहता है तो इन दोनों वाचनाओं के पाठ में विदूषक की एक उक्ति ज्यादा मिलती है। विदूषक यहाँ वैतालिकों के गान के सन्दर्भ में राजा दुष्यन्त की मजाक उडाता है। जैसे कि,

राजा– (आकर्ण्य) आश्चर्यम्, कार्यशासनपरिश्रान्ताः पुनर्नवीभूता स्मः ।

विदूषकः– गोविन्दारको त्ति भणिदस्स रिसभस्स परिस्समो णस्सदि ।।

इस तरह के हास्यप्रेरक वाक्य के आधिक्य से प्रेक्षकों को क्षणिक आनन्दित करने का लक्ष्य रखा गया होगा। लेकिन मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में जो (हंसपदिकागीत एवं वैतालिकों के गान का) पाठक्रम आगे-पीछे किया गया है उससे वैतालिकों के गान का कोई विशेष नाट्यगत प्रयोजन रहता नहीं है। बल्कि वैतालिकों के गान के सन्दर्भ में, किसी अज्ञात रंगकर्मी के द्वारा राजा जैसे नायक का ऐसा उपहास करवाने से नाटक की कुछ शोभा तो वढती ही नहीं है ।। किन्तु विदूषक की उपर्युक्त उक्ति (एवं हंसपदिकागीत एवं वैतालिकों के गान का आगे-पीछे किया गया) कालान्तर में किसी स्थानीय रंगकर्मी के द्वारा किये गये पाठपरिवर्तन एवं परिवर्धन का सबूत सिद्ध होता है ।। दूसरी ओर हम देखें तो काश्मीरी (एवं देवनागरी तथा दाक्षिणात्य) वाचना के पाठ में विदूषक का ऐसा कोई संवाद नहीं है। क्योंकि इन वाचनाओं में वैतालिकों के गान से पूर्व में आये हुएं हंसपदिका के गीत के अनुसन्धान में विदूषक को रंगमंच से विदाई दी जाती है ।।

(2) शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग में जो पाठभेद मिल रहे हैं उनमें भी रंगकर्मिओं की द्विविधता प्रतिबिम्बित होती हुई दिखाई रही है। वृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में शकुन्तला ने मुखर हो कर दुष्यन्त को वाचिक रूप से फटकारते हुएकहा है कि, "तुम्हे ज्जेव पमाणं जाणध धम्मत्थिदिं च लोअस्स। लज्जाविणिज्जिदाओ जाणन्ति ण हु किं पि महिलाओ ।।" राजा दुष्यन्तने

[24]डॉ. एस. के. बेलवालकर, डॉ. वी. राघवन् एवं डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने अकेले इस नाकलासिका-दृश्य को ही काश्मीरी वाचना की अलग पहचान देनेवाला दृश्य कहा है।

जव शकुन्तला को "अन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति" ऐसा कटाक्ष किया था तब उपर्युक्त गाथा सुनाई है । यद्यपि यह गाथा मौलिक होने की सम्भावना नहीं है । तथापि यह किसी स्थानीय रंगकर्मी ने मंचन के दौरान अभिनीत जरूर करवाया होगा, जिसके कारण वह पाठान्तर के रूप में हम तक पहुँचा है ।।

निष्कर्षतः – कालिदास के इस महान् नाटक की जिन पाठपरम्पराओं को विद्वानों ने पञ्चविध वाचनाओं के नाम से पहेचानी हैं, उसके सार्थक पाठभेदों को यदिविश्लेषित किये जायेंगे तो उनमें रंगकर्मिता ही विशेषरूप से प्रतिविम्वित हो रही ऐसा स्पष्ट दिखता है ।अतः हम इन पाँचों वाचनाओं को "रंगावृत्ति के पाँच पाठ" कहेना पसंद करते हैं ।। हमारे इस तरह के अभिप्राय का समर्थन करने के लिए हमने इस नाटक के पद्यांशो में उपलह्ध हो रहे श्लोकों का भी परामर्शन करना आवश्यक समझा है । अतः निम्नोक्त भाग को विद्वानों की सेवा में उसे भी रखा जा रहा है ।। क्योंकि इस नाटक के पद्यभाग में जिन जिन सार्थक पाठभेदों का दर्शन होता है, उसमें मंचनलक्षी परिवर्तन कम है और कविंमन्यमान वुद्धिओं का प्रदर्शन ज्यादा है उसकी पहचान भी देनी आवश्यक है ।। दो हजार वर्षों की लम्वी कालावधि में वहुत सारा परिवर्तित हो जाने के वाद भी (पाँच पाँच वाचनाओं या पाँच पाँच रंगावृत्तियाँ वन जाने के वाद भी) इस नाटक का आकर्षण यथावत् वना रहने का राज़ भी कुछ होना चाहिए ।। इसको समझने के लिए निम्नोक्त विश्लेषण विद्वानों की सेवा में, विशेषरूप से मेरे पूज्य सम्माननीय गुरुवर्य प्रॉफेसर श्री तपस्वी नान्दी जी की सेवा में, एक श्रद्धासुमन के रूप में समर्पित है ।। अस्तु ।।

[10]

"अभिज्ञानशाकुन्तल"के श्लोकों में वृद्धि-ह्रास का विश्लेषण। संस्कृत नाट्यसाहित्य में महाकवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक शताब्दिओं से सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया है । तथापि आज उपलब्ध हो रहे इस नाटक के पाठ में बहुविध परिवर्तन हो गये हैं । जिसके कारण उसके शीर्षक से लेकर भरत-वाक्य पर्यन्त का एक भी वाक्य या श्लोक शायद ऐसा नहीं हैं कि जिसमें दो तरह के पाठभेद आपको न मिलें ।अतः डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के मतानुसार मंचन के दौरान इस नाटक के मूल पाठ में ढेर सारे परिवर्तन एवं परिवर्धन होते रहे हैं जिसके फल-स्वरूप उसके कंकाल के अलावा दूसरा कुछ अवशिष्ट नहीं रहा है । इस नाटक का मूल स्वरूप प्रायः विनष्ट हो गया है[25] ।

यह वात सही है कि इस नाटक के प्रचलित पाठ में एकरूपता नहीं है, क्योंकि उसमें बहुविध परिवर्तन किये गये हैं । फिर भी डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के अभिप्राय से इस नाटक के पाठ में केवल अस्थिपिञ्जर ही वचा हुआ है, ऐसा कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण है । क्योंकि, यदि इस नाटक की अस्मिता को ही पूरी तरह से बदल देनेवाले पाठपरिवर्तनों ने स्थान लिया होगा तो उसकी चमत्कृति भी हंमेशा के लिए गायव हो जानी चाहिए । किन्तु ऐसा तो हरगिझ हुआ नहीं है । मतलब कि इस नाटक की जिन पाँच वाचनायें (1. काश्मीरी वाचना, 2. मैथिली वाचना, 3. बंगाली वाचना, 4. देवनागरी वाचना एवं 5. दाक्षिणात्य वाचना) आज उपलब्ध हो रही हैं उनमें से किसी एक को भी पढ़ने से अपूर्व रसानुभूति तो होती ही है ! यानें इस नाटक की कुछ निजी विशेषता तो प्रत्येक वाचना में बहुशः सुरक्षित भी रही होगी ।।

---

[25]The text of the drama was handled differently in different parts of India as a result of which it underwent colossal changes. Except the skeleton, the original drama appeared to have been lost. Probable attempts at dramatization had caused either inflation or the diminution of the text through addition or retrenchment. – A Reconstruction of the Abhijnanasákuntalam, Ed. Prof. D.K. Kanjilal, Calcutta, 1980, Introduction, Chapter : 2, page :45

नाटक जैसी अभिनेय-काव्य कृति में जो पाठपरिवर्तन होते हैं, वे प्रमुखतः दो तरह के हो सकते हैं:-- (क) मंचनलक्षी एवं (ख) काव्यलक्षी । इनमें से किस तरह का परिवर्तन अधिक मात्रा में दिख रहा है, वह भी विचारणीय बिन्दु है । अर्थात् इन दोनों तरह के परिवर्तनों में प्रधान-गौण भाव भी सब से पहले सुनिश्चित करना चाहिए ।। इस नाटक के पाठान्तरों का अभ्यास करने से मालूम होता है कि इस नाटक के मूल पाठ में मंचनलक्षी पाठपरिवर्तनों के साथ साथ काव्यलक्षी पाठपरिवर्तन भी होते रहें है । लेकिन मंचनलक्षी पाठपरिवर्तन के हर मौके पर इस नाटक के पद्यांश के साथ अपेक्षाकृत कम खिलवाड़ किया गया होगा ऐसी एक उत्कल्पना / पूर्वावधारणा (hypothesis) हम कर सकते है । क्योंकि जिसमें कालिदास का काव्यतत्त्व संनिहित है, ऐसे सुप्रसिद्ध श्लोकों में वहुत अल्पमात्रा में पाठभेदों ने प्रवेश किया है । इस नाटक का पद्यभाग अभी भी वहुत बडी मात्रा में सुरक्षित वचा हुआ है । अतः प्रत्येक वाचना के पाठ में रंगसूचनाओं की विसंगतियाँ, नायक सहित के अनेक पात्रों के नामाभिधान में एकाधिक वर्तनी[26], दृश्य का कम-ज्यादा होना, या किसी दृश्य का उपस्थिति-क्रम वदल जाना, विष्कम्भक एवं प्रवेशक की एकरूपता का अभाव, प्राकृत का अलग अलग प्रान्तीय स्वरूप, एक शब्द से लेकर एक-दो श्लोक पर्यन्त का प्रक्षेप या संक्षेपादि का ढेर किसी भी विचक्षण पाठक या प्रेक्षक को खटकता है, लेकिन उसके वावजुद भी उसकी अनुपम सुन्दरता भी निर्विवाद रूप से प्रतीत होती ही है । एवमेव, उसका आकर्षण सदैव सार्वभौमिक बना रहता है । अतः प्रस्तुत आलेख में इस नाटक के काव्यसौन्दर्य को संजोये रखनेवाले पद्यभाग की[27] तुलनात्मक परीक्षा करने का उपक्रम रखा गया है ।।

[क]

सभी वाचनाओं का तुलनात्मक अभ्यास करने से मालूम होता है कि काश्मीर की शारदा लिपि में लिखा हुआ "अभिज्ञानशकुन्तला" शीर्षक से ख्यात इस नाटक का पाठ 7वीं या 8वीं शताब्दि का हो सकता है । तथा देवनागरी एवं दाक्षिणात्या वाचनाओं में संचरित हुआ एवं "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" शीर्षक से विख्यात इस नाटक का पाठ 14वीं या 15वीं शती का हो सकता है । प्राचीन भारतीय लिपियों के उद्भव एवं विकास का भी एक इतिहास है । व्राह्मी लिपि में से विकसित हुई शारदा लिपि में संचरित हुआ पाठ ही अन्य लिपियों में संचरित हुए पाठों की अपेक्षा से प्राचीनतम सिद्ध होता है । एवमेव, इस नाटक की उपलब्ध पाठपरम्पराओं में से काश्मीरी पाठपरम्परा ही आन्तरिक प्रमाणों से भी सर्व प्रथम आती है । तत्पश्चात् दूसरे क्रम में मैथिली वाचना और तीसरे क्रम में वंगाली वाचना का पाठ आकारित हुआ है । (इन दो वाचनाओं में इस नाटक का शीर्षक"अभिज्ञानशकुन्तलम्" है ।) चौथे एवं पाँचवे क्रम पर देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना का पाठ उद्भूत हुआ होगा ऐसा मानना उचित लगता है । विविध वाचनाओं के पाठ की ऐसी आनुक्रमिकता में भले ही काश्मीरी वाचना प्रथम क्रमांक पर खडी हो, लेकिन उसका मतलव ऐसा भी नहीं है कि उसमें संचरित हुआ जो पाठ आज जिस स्वरूप में उपलब्ध हो रहा है वह उसी स्वरूप में सर्वथा मौलिक ही है । कहने का तात्पर्य ऐसा है कि शारदा पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहे पाठ में भी परिवर्तन-परिवर्धन के दर्शन हो रहे हैं । अतः प्रस्तुत परामर्शन में काश्मीरी वाचना के पाठ में भी जहाँ जहाँ पर अमुक श्लोकों के प्रक्षेप एवं संक्षेप का खिलवाड प्रतिविम्वित हुआ है, उस शारदा "शकुन्तला" से आरम्भ करके मैथिली, बंगाली, देवनागरी और अन्त में दाक्षिणात्य वाचना तक की पाठयात्रा में श्लोकसम्वन्धी वृद्धि-ह्रास का जो सिलसिला दिख रहा है उसकी चर्चा की जाती है ।।

---

[26]जैसे कि, दुःषन्त-दुष्वन्त-दुष्मन्त-दुषन्त-दुष्यन्त, अनसूया-अनुसूया, कुलप्रभा-वसुमती, अक्षमाला-मिश्रकेशी- सानुमती, माधव्य-माढव्य इत्यादि ।

[27]हमने"अभिज्ञानशकुन्तला के पाठविचलन की आनुक्रमिकता" शीर्षकवाले शोध-आलेख में इस नाटक के पाठ में जो मंचनलक्षी परिवर्तन हुए हैं उसकी विस्तृत आलोचना की है । द्रष्टव्यः- "नाट्यम्" शोध-पत्रिका । (अंक-76), सं. श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2014, पृ. 26 से 54.

[ख]

यहाँ पर सब से पहले विभिन्न वाचनाओं के पाठ में कितने कितने श्लोक मिल रहे हैं ? उसका निर्देश करना चाहिए । काश्मीरी के "अभिज्ञानशकुन्तला" नाटक में 213 श्लोकों का योग होता है । मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में "अभिज्ञानशकुन्तल" नामक नाटक में कुल मिला कर 225 एवं 221 श्लोक उपलब्ध होते हैं । देवनागरी वाचना के "अभिज्ञानशाकुन्तल" में (टीकाकार राघवभट्ट ने)190 श्लोकोंवाला पाठ माना है । तथा दाक्षिणात्य वाचना में टीकाकार काटयवेम ने 193 श्लोकोंवाला पाठ ग्राह्य रखा है । मतलब कि पहली तीनों वाचनाओं में इस नाटक का "वृहत्पाठ" संचरित हुआ है । तथा उत्तरवर्ती दोनों वाचनाओं में इसका "लघुपाठ" संचरित हुआ है । यह लघुपाठ उत्तरवर्ती काल की एक रंगावृत्ति ही है, और लघुपाठ की अपेक्षा से वृहत्पाठ की तीनों वाचनायें पुरोगामिनी है । यद्यपि वृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में भी मंचनलक्षी परिवर्तन के लक्षण दिख रहे हैं । इस विषय की हमने सप्रमाण उपस्थापना एक अन्य शोध-आलेख में की है[28] । किन्तु कालिदास के इस नाटक के मूलपाठ में बहुविध परिवर्तन होने के वावजुद भी उसका आकर्षण जैसा का वैसा अक्षुण्ण वना रहा है यह एक रहस्य की वात है । अब, इस रहस्य का एक अज्ञात पहलु समुद्घाटित करने के लिए इस नाटक के पद्यभाग की कितनी मात्रा में सुरक्षा हुई है और कितनी मात्रा में विकृति पैदा की गई है ? उसे हम देखेंगे । विभिन्न वाचनाओं के अद्यावधि प्रकाशित हुए संस्करणों में, इस नाटक के प्रत्येक अंक में उपलब्ध हो रही श्लोक-संख्या का समुदित चित्र इस तरह का हैः—

	काश्मीरी	मैथिली	बंगाली	देवनागरी	दाक्षिणात्य
प्रथम अंक	30	33	33	30	31
द्वितीय अंक	19	19	19	18	18
तृतीय अंक	35	40	41	24	24
चतुर्थ अंक	26	26	24	22	22
पञ्चम अंक	33	34	32	31	31
षष्ठ अंक	34	37	37	32	32
सप्तम अंक	36	36	35	34	35
कुल योग	**213**	**225**	**221**	**191**	**193**

इस सन्दर्भ में, सब से पहले यह ज्ञातव्य है कि सभी वाचनाओं में यत्र कुत्रापि जितने भी श्लोक मिल रहें हैं उन सब की सम्मिलित संख्या क्या रही होगी ? । तो इस नाटक की विभिन्न वाचनाओं में कुल मिला कर 232 श्लोक उपलब्ध हो रहे हैं[29] । उनमें से पहले यह छाँटना चाहिए कि (क) कितने श्लोक निर्विवादरूप से मौलिक प्रतीत होते हैं, या कितने श्लोक ऐसे हैं कि जिसके मौलिक होने की सम्भावना अधिक से अधिक हैं, (ख) कितने श्लोक शारदा-पाठपरम्परा शूरु होने से पहले से ही प्रक्षिप्त श्लोक के रूप में चले आ रहे होंगे, जिसको "विरासत में मिले प्रक्षिप्त श्लोक" कहेंगे, (ग) शारदा परम्परा प्रचलित होने के बाद अनुगामिनी वाचनाओं में कितने कितने श्लोक प्रक्षिप्त किये गये हैं, (घ) ऐसे नये प्रक्षिप्त किये गये श्लोकों में से कितने श्लोक

---

[28]देवनागरी वाचना के अभिज्ञानशाकुन्तल में संक्षेपीकरण के पदचिह्न, "नाट्यम्" (अंकः 71-74), सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2012, (पृ. 27 से 57)

[29]जिसकी सूचि इस आलेख के परिशिष्ट में रखी गई है ।

ऐसे है कि जो परवर्ती वाचनाओं में अनुसृत हुए हैं, (ङ) किस (और कितने) श्लोक को अमुक वाचना में से हटाया गया है, (च) कितने श्लोक मौलिक होते हुए भी शारदा पाठ में से संक्षेपीकरण के आशय से निकाल दिये गये हैं, (छ) कितने श्लोक शारदा पाठ में अनिर्दिष्ट हैं, जो कालान्तर में प्रक्षिप्त हुए होंगे, (ज) शारदा में जो अनिर्दिष्ट श्लोक हैं, उनमें से कितने श्लोक परवर्ती काल की वाचनाओं में भी अनिर्दिष्ट रहे हैं, तथा (झ) कितने श्लोक ऐसे हैं कि जो काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में एक समान रूप से उपलब्ध होते हैं, लेकिन लघुपाठवाली देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में अग्राह्य रहें हैं ? इन सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रत्येक वाचनाओं के सन्दर्भ में 232 श्लोकों का पृथक् पृथक् विश्लेषण करना आवश्यक है ।।

[ग]

जैसा कि पहले बताया है काश्मीरी वाचना का पाठ शारदा-लिपि में संचरित हुआ है, अतः लिपियों के इतिहास की दृष्टि से सोचा जाय तो उन शारदा-पाण्डुलिपियों में लिखे गये काश्मीरी वाचना के पाठ को ही सब से पहला और प्राचीनतम कहना होगा । एवमेव, इसी वाचना का पाठ ही सब से अधिक मात्रा में श्रद्धेय प्रतीत होता है । क्योंकि उसमें संचरित हुए पाठ ही महदंश में आन्तरिक सम्भावना से समर्थित होता है । जिसकी सप्रमाण उपस्थापना "अभिज्ञान-शकुन्तला के पाठविचलन की आनुक्रमिकता" शीर्षकवाले हमारे शोध-आलेख में की गई है[30] । इस नाटक के काश्मीरी वाचना के पाठ में कुल मिला कर 213 श्लोकों प्राप्त होते हैं । जिसका विश्लेषण निम्नोक्त पञ्चविध स्वरूप में किया जाता हैः—

(1) 213 में से 195 श्लोक निर्विवाद रूप से मौलिक होने की सम्भावना हैं । (2)सात श्लोक शारदा-पाठपरम्परा शूरु होने से पहले से ही प्रक्षिप्त श्लोक के रूप में मूल पाठ में प्रविष्ट हुए होंगे, जो काश्मीरी वाचना को विरासत के रूप में मिले हैं । इन श्लोकों का प्रतीकात्मक निर्देश किया जाय तो,

(क) अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि0 । (अंक-3)
(ख) अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि0 । (अंक-3)
(ग) अप्यौत्सुक्ये महति दयित0 । (अंक-3)
(घ) रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना0 । (अंक-3)
(ङ) यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्0 । (अंक-4)
(च) अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीं मे । (अंक-4)
(छ) तुम्हे य्येव पमाणं जाणीध0 । (अंक-5)

(3)दो श्लोक ऐसे हैं कि जो परम्परागत शारदा पाठ में से निष्कासित किये गये हैं, लेकिन वे दोनों का मूलपाठ में होना अपेक्षित है ।जैसे कि, (क) इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे0 । (अंक-1), एवं (ख) यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते0 । (अंक-1) ।।

(4) इस काश्मीरी वाचना में कुल मिला कर एकादश श्लोक ऐसे हैं कि जो बृहत्पाठवाली अन्य दो (मैथिली एवं बंगाली) वाचनाओं में भी उपलब्ध होते हैं । लेकिन ये एकादश श्लोक लघुपाठवाली देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठ में से हटाये गये हैं । इन एकादश श्लोकों का प्रतीकात्मक निर्देश इस तरह का हैः—

(1) त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न0 । (अंक-3)
(2) अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य0 । (अंक-3)
(3) मणिबन्धनगलितं संक्रान्तो0 । (अंक-3)

---

[30]द्रष्टव्य : नाट्यम् । (अंक – 76) रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की त्रैमासिक शोध-पत्रिका, सं. - श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2014, पृ. 26 - 54

(4) अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये0। (अंक-3)
(5) पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं0। (अंक-3)
(6) हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृत0। (अंक-3)
(7) अयं स ते श्यामलतामनोहरं0। (अंक-3)
(8) चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षत0। (अंक-3)
(9) इदमुप्युपकृतिपक्षे सुरभिमुखं0। (अंक-3)
(10) कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जय0। (अंक-4)
(11) पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि0। (अंक-4)

इन श्लोकों में से पहले नव श्लोक तीसरे अंक में आये हुए हैं। जहाँ पर दुष्यन्त-शकुन्तला का सुन्दर प्रेमसहचार दिखलाया गया है। इसके लिए महाकवि ने दो दृश्य रखे हैं। जैसे कि, 1. नायक शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाता है। एवं 2. पुष्परज से कलुषित हुए नायिका के नेत्र को दुष्यन्त अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर देता है।। अन्तिम दो श्लोक चतुर्थांक के आरम्भ में आते हैं। इनको प्रभातवेला का वर्णन करते हुए शिष्य के मुख में रखे गयें हैं। ये दोनों ही श्लोक मूलगामी श्लोक होते हुए भी वे विस्मृति के गर्त में पडे हुए हैं। मैथिली वाचना ने काश्मीरी वाचना का अनुगमन करते हुए इन दोनों श्लोकों का उपस्थिति क्रम पहला-दूसरा ही रखा है। किन्तु बंगाली वाचना के पाठशोधकों ने इन दो मौलिक श्लोकों को तीसरे चौथे क्रम पर धकेल दिये है। अन्ततो गत्वा, ये दोनों, देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में से हटाये गये हैं।।

(5) कुल सतराह श्लोक ऐसे हैं कि जो काश्मीरी वाचना के पाठ में उपलब्ध ही नहीं होते हैं। मतलब कि कालान्तर में मैथिली आदि वाचनाओं के पाठशोधकों ने इन सतराह श्लोकों का प्रक्षेप किया होगा। इन प्रक्षिप्त श्लोकों का प्रतीकात्मक निर्देश निम्नोक्त शब्दों में है:—1. न खलु न खलु वाणः संनिपात्यो0 (अंक-1), 2. जन्मयस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं0। (अंक-1), 3. कठिनमपिमृगाक्ष्या वल्कलं0। (अंक-1), 4.अनिशमपिमकरकेतुर्मनसो0। (अंक-3), 5. वृथैवसंकल्पशतैरजस्रमनङ्ग0। (अंक-3), 6. संमीलन्तिन तावद् वन्धनकोशा0। (अंक-3), 7. शशिकरविशदान्यास्तथा0। (अंक-3), 8. अयंस यस्मात् प्रणयावधीरणा0। (अंक-3), 9. गान्धर्वेणविवाहेन वह्व्योऽथ0। (अंक-3), 10. अपरिक्षतकोमलस्ययावत्कुसुमस्य0। (अंक-3), 11. मय्येवविस्मरण-दारुणचित्तवृत्तौ0। (अंक-5), 12. चूतंहर्षितपिककं जीवितसदृशं0। (अंक-6), 13. मुनिसुता-प्रणय-स्मृतिरोधिना0। (अंक-6), 14. दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र0। (अंक-6), 15. अस्यास्तुंगमिवस्तनद्वयमिदं0। (अंक-6), 16. यद्यत्साधुन चित्रे स्मिन्0। (अंक-6), एवं 17. तवभवतु विडौजाः प्राज्यवृष्टि0। (अंक-7)।।

निष्कर्षतः कहे तो, काश्मीरी वाचना में जिन 213 श्लोकों का संनिवेश हुआ है उनमें से 195 श्लोक मौलिक होने की पूरी सम्भावना है। किन्तु दो श्लोक ऐसे भी हैं कि जो मौलिक होते हुए भी संक्षेपीकरण के आशय से हटाये गये होगें। (यानें कुल मिला कर 197 श्लोक मौलिक या सर्वाधिक श्रद्धेय होने की कोटि में आते हैं।) काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले प्रक्षिप्त श्लोक केवल 7 हैं। तथा कुल 17 श्लोकों ऐसे हैं जो प्राचीनतम सिद्ध हो रही काश्मीरी वाचना के पाठ में नहीं थे, लेकिन जिनको कालान्तर में अन्यान्य वाचनाओं ने प्रक्षिप्त किये हैं। एवमेव, कुल एकादश श्लोक ऐसे हैं कि जो वृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में एक समान रूप से ग्राह्य रहें हैं।।

काश्मीरी वाचना के बाद, दूसरे स्तर पर मैथिली वाचना का गठन हुआ होगा। इस विचार की पुष्टि षष्ठांक के अन्त भाग को देखने से मिलती है। काश्मीरी वाचना में, राजा की परिचारिका का नाम मेधाविनी है और रानी कुलप्रभा की परिचारिका का नाम पिङ्गलिका है। इन दोनों नामों की सुरक्षा मैथिली वाचना में हुई है। किन्तु बंगाली वाचना में मेधाविनी नाम को बदल कर, उसके स्थान में "चतुरिका" जैसा नया नाम दाखिल किया जाता है। यद्यपि बंगाली वाचना के पाठशोधकों के हाथ से गलती भी रह जाती है कि चतुरिका जैसा नया नाम दाखिल करते समय, उन लोगों के अनवधान से एक स्थान पर मेधाविनी जैसा पुराना नाम यथावत् चालु भी रह गया है! जिससे मालूम होता है कि मैथिली वाचना का गठन दूसरे स्तर पर हुआ है एवं बंगाली वाचना का गठन तीसरे स्तर पर हुआ है। तथा देवनागरी वाचना ने रानी की दासी का नाम पिङ्गलिका बदल कर, तरलिका कर दिया है। अतः ज्ञात होता है कि चतुर्थ स्तर पर वर्तमान देवनागरी वाचना का पाठ गठित हुआ होगा। इस तरह से वाचनाओं के विकास-क्रम का निर्धारण करने में अन्य प्रमाण भी है, किन्तु विस्तारभय से यहीं रुकते है। अस्तु। प्रकृतमनुसरामः ।। अब मैथिली वाचना के पाठ में आये हुए श्लोकों का विश्लेषण किया जाता है:—सब से पहले यह स्मर्तव्य है कि हमने इस नाटक की विभिन्न वाचनाओं में जितने भी श्लोक उपलब्ध होते है उन सब का परिगणन करके उसकी संख्या 232 है, यह निश्चित कर लिया है। उनमें से कुल 225 श्लोक ऐसे हैं कि जो मैथिली वाचना में उपलब्ध हो रहे हैं। काश्मीरी वाचना के 213 श्लोकों हैं ऐसा हमने उपर कहा है, उसके सामने इस मैथिली में 225 श्लोक सम्मिलित हुए हैं। अतः मैथिली वाचना में कितने श्लोकों का प्रक्षेप-संक्षेपादि हुआ है ? वह देखना है। (1) इस वाचना में कुल 196 श्लोक ऐसे मिलते हैं जो मूलगामी पाठ में रहे होंगे। याने इसमें 196 श्लोक श्रद्धेय प्रतीत होते हैं। (2) प्रक्षिप्त प्रतीत होनेवाले जिन 7 श्लोकों को हमने काश्मीरी वाचना को "विरासत में मिले" कहे है, वही सात श्लोक मैथिली वाचना में भी संचरित हो कर आये हैं। (3) परापूर्व से चले आ रहे इन सात प्रक्षिप्त श्लोकों के साथ, मैथिली वाचना के पाठशोधकों ने नये एकादश श्लोक (जो संख्या में सब से अधिक हैं) प्रक्षिप्त भी किये हैं। (इनमें से सभीश्लोकों बंगाली वाचना में भी अनुसृत हुए हैं।) इन श्लोकों का प्रतीकात्मक निर्देश निम्नोक्त हैं :-

(1) न खलु न खलु बाणः संनिपात्यो0। (अंक-1)

(2) अनिशमपिमकरकेतुर्मनसो0। (अंक-3)

(3) वृथैवसंकल्पशतैरजस्रमनङ्ग0। (अंक-3)

(4) संमीलन्तिन तावद् बन्धनकोशा0। (अंक-3)

(5) अयंस यस्मात् प्रणयावधीरणा0। (अंक-3)

(6) गान्धर्वेणविवाहेन बह्व्यो थ0। (अंक-3)

(7) मय्येवविस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ0। (अंक-6)

(8) मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना0। (अंक-6)

(9) दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र0। (अंक-6)

(10) यद्यत्साधुन चित्रे स्मिन्0। (अंक-6)

(11) तवभवतु विडौजाः प्राज्यवृष्टि0। (अंक-7)

यहाँ हम देख सकते हैं कि मैथिली वाचना के पाठशोधकों ने गान्धर्व-विवाह वर्णित करनेवाले तृतीयांक में पाँच श्लोकों का प्रक्षेप किया है, जिसमें "गान्धर्वेण विवाहेन0" वाले श्लोक का भी समावेश होता

है। तथा कुल चार श्लोकों का प्रक्षेप षष्ठांक के शकुन्तला की प्रतिकृति जिसमें चित्रित (एवं वर्णित) की गई है उस दृश्य में किया हैं। एवमेव, प्रथम तथा सप्तमांक में एक-एक श्लोक का प्रक्षेप किया गया है। यहाँ अतीव ध्यानास्पद दो विन्दुएँ हैः-- जैसे कि, (क) मैथिली वाचना ने ही सब से अधिक नवीन श्लोकों की रचना करके प्रक्षेप किये हैं, तथा (ख) उनमें से सभी श्लोकों का स्वीकार अनुगामी काल की बंगाली वाचना में हुआ है। उनमें से देवनागरी ने चार तथा दाक्षिणात्य वाचना ने पाँच श्लोकों का स्वीकार किया है ।।

(4) काश्मीरी वाचना का एक श्लोक "अविषयगमनं0" (अंक-7) मैथिली में समाविष्ट नहीं है, क्योंकि केवल काश्मीरी वाचना में उपलब्ध होनेवाला नाकलासिकाओं के नृत्य का दृश्य मैथिली वाचना ने मान्य नहीं रखा है। (5) एवमेव, एकादश श्लोक ऐसे हैं कि जो केवल बृहत्पाठवाली पूर्वोक्त तीनों वाचनाओं में ही मिलते हैं। (6) काश्मीरी वाचना के पाठ में जिन पाँच श्लोकों का (1. जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं0 ।, 2. कठिनमपिमृगाक्ष्या वल्कलं0 ।, 3. अपरिक्षतकोमलस्ययावत्कुसुमस्य0 ।, 4. चूतंहर्षितपिककं जीवितसदृशं0 ।, 5.अस्यास्तुंगमिवस्तनद्वयमिदं0 ।) निर्देश नहीं हैं, उन पाँच श्लोकों का मैथिली में भी उल्लेख नहीं हैं।

[ङ]

बंगाली वाचना की में कुल मिला कर 221 श्लोकों का समावेश हुआ हैं। (1) इनमें से जिन श्लोकों की मौलिक होने की सम्भावना है वे 193 हैं। (2) तदुपरांत, इन 221 श्लोकों में से सात श्लोक वे हैं जो प्राचीनतम काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले प्रक्षिप्त श्लोक थे। (3) तीन श्लोक [1. कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं0 । (अंक-1), 2. शशिकरविशदान्यास्तथा0 । (अंक-3), 3. अस्यास्तुंगमिवस्तनद्वयमिदं0 ।(अंक-6)] ऐसे हैं कि जो बंगाली वाचना ने नये प्रक्षिप्त किये हैं।[इन तीनों में पहला और तीसरा श्लोक रिचार्ड पिशेल ने नहीं स्वीकारें हैं, किन्तु बंगाली वाचना के पाठ पर टीका लिखनेवाले चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने उन दोनों पर अरुचि के साथ टीका लिखी है](4) बंगाली वाचना ने मैथिली वाचना के एकादश प्रक्षिप्त श्लोक यथावत् स्वीकार्य रखे हैं। (5) तीन श्लोक बंगाली वाचना में से हटाये गये हैं। जैसे कि, 1. अज्ज पिएण विणा जं गमेइ रत्तिं0 । (अंक-4), 2. यदाशरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्व0 । (अंक-4), तथा 3.क्रतुभिरुचितभागांस्त्वंसुरान्0 । (अंक-7) । ये तीन श्लोक वे हैं जो काश्मीरी वाचना में संचरित हुए हैं, और वे श्रद्धेय हैं ।(6) एवमेव, वे एकादश श्लोक ऐसे ही कि जो बंगाली सहित की बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में संचरित हुए है। यानें इन तीनों वाचनाओं के पाठ में विभिन्न स्थानों पर प्रक्षेप अवश्य हुए है, लेकिन उन में संक्षेपीकरण के आशय से कोई मौलिक पाठ्यांश को हानि नहीं पहुँचाई गई है ।।

[च]

देवनागरी वाचना के टीकाकार राघवभट्ट ने इस नाटक के पाठ में 191 श्लोकों का स्वीकार किया है। जो काश्मीरी (213 श्लोकों), मैथिली (225 श्लोकों) या वंगाली (221 श्लोकोंवाली) वाचना की अपेक्षा से संक्षिप्त होने के कारण "लघुपाठ" कहा जायेगा। (1) किन्तु 191 श्लोकों में से जो मूलपाठ के रूप में स्वीकार्य हो सकते हैं वे 183 श्लोक ही है। (2) काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले प्रक्षिप्त श्लोकों में से प्रभातवेला का वर्णन करनेवाले दो श्लोक देवनागरी वाचना में स्वीकार्य बने हैं। जैसे कि, यात्येकतोस्तशिखरम्0 तथा अन्तर्हिते शशिनि0 । (3) देवनागरी वाचना के पाठशोधकों ने अपनी ओर से दो नवीन श्लोकों का प्रक्षेप भी किया हैः- 1. जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं0 । (अंक-1), तथा 2. अपरिक्षतकोमलस्ययावत्कुसुमस्य0 । (अंक-3) । ये दो श्लोक बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में नहीं है। एवमेव, (4) मैथिली वाचना ने जिन श्लोकों का प्रक्षेप किया हैं उन में से छह श्लोकों का अनुगमन देवनागरी वाचना ने किया है। जैसे कि, 1.गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योऽथ0 ।, 2. मय्येवविस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ0।, 3. मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना0। एवं 4. यद्यत्साधुन चित्रेऽस्मिन्0 ।। इस तरह के 191 श्लोकोंवाले देवनागरी

वाचना के कलेवर में संक्षेपीकरण के आशय से भारी कटौती की गई है । जिसको हम अल्पसमयावधि में प्रस्तुत करने के लिए बनाई गई एक सुरुचिपूर्ण रंगावृत्ति ही कह सकते हैं ।।

[छ]

दाक्षिणात्य वाचना में कुल श्लोक 193 है । यह श्लोक-संख्या काटयवेम (1500 ई. स.) नामक टीकाकार ने मान्य की है । (देवनागरी वाचना के टीकाकार राघवभट्ट ने 191 श्लोक मान्य किये हैं ।) जिनमें से 181 श्लोक ऐसे है कि जो नाटक के मूलगामी पाठ में रहे होंगे । (1) दाक्षिणात्य वाचना के पाठशोधकों ने भी एक नवीन श्लोक का प्रक्षेप किया है । वह श्लोक "चूतं हर्षितपिककं जीवितसदृशं0"। अंक-6 में प्राप्त होता है । कहना होगा कि यह श्लोक "आताम्र-हरितपाण्डुर जीवित0"(अंक-6)। के बदले में नया रचा गया है ।। (2) इस दाक्षिणात्य वाचना के पाठशोधकों ने नव प्रक्षिप्त श्लोक ऐसे ग्राह्य रखें हैं कि जो पुरोगामिनी वाचनाओं में से लिये गये हैं । जैसे कि, देवनागरी वाचना ने प्रक्षिप्त किये दो श्लोक [1.जन्मयस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं0 । (अंक-1), एवं 2. अपरिक्षत-कोमलस्ययावत् कुसुमस्य0 । (अंक-3)] दाक्षिणात्य वाचना में यथावत् ग्राह्य रखे गये हैं । काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले दो प्रक्षिप्त श्लोक [3.यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधी0 ।, एवं 4.अन्तर्हितेशशिनि सैव कुमुद्वती0 ।] जिनको चतुर्थांक के आरम्भ में प्रभातवेला का वर्णन करने के लिए प्रस्तुत हुए हैं, उनको स्वीकारे हैं । इनके अलावा, दाक्षिणात्य वाचना में पाँच श्लोक ऐसे है कि जो मैथिली परम्परा ने प्रक्षिप्त किये थे उनको भी स्थान दिया हैं । [जैसे कि, 5.न खलु न खलु बाणः संनिपात्यो0 । (अंक-1), 6.गान्धर्वेणविवाहेन बह्व्योऽथ0 । (अंक-3), 7.मय्येवविस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ0 । (अंक-5), 8. मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना0। (अंक-6), 9.यद्यत्साधुन चित्रेऽस्मिन्0 । (अंक-6) ।] (3) काश्मीरी वाचना में से जैसे "यतो यतः षट्चरणो-ऽभिवर्तते0" ।(अंक-1) श्लोक को संक्षेपीकरण के आशय से हटाया गया है, उसका अनुसरण दाक्षिणात्य वाचना में भी किया गया है । (4) दाक्षिणात्य वाचना के पाठशोधकों ने अपनी ओर से दो श्लोकों को हटाया है । जैसे कि, 1.आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं विअ0 ।(अंक-6), एवं 2. साक्षात्प्रियाम् उपगतामपहाय0 । (अंक-6) ।। (5) दाक्षिणात्य वाचना ने कुल 23 श्लोकों को अपने पाठ्यांश में से हटा दिये हैं । जिनमें से दो श्लोक (1. यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्व0 ।(अंक-4), 2. क्रतुभिरुचितभागांस्त्वंसुरान्0। (अंक-7)) बंगाली वाचना ने निकाल दिये थे, एवं एक (अविअगमणं कंचणअण्णं च0 ।(अंक-7) श्लोक मैथिली वाचना ने हटाया था । अन्य 20 श्लोक देवनागरी के संक्षेपीकरण के अनुसरण रूप हैं । (6) दाक्षिणात्य वाचना में 12 श्लोक ऐसे हैं कि जिनमें से 8 श्लोक काश्मीरी में नहीं थे, और अन्य चार श्लोक देवनागरी ने हटाये थे, उनका सीधा अनुसरण किया गया है । इस विश्लेषण का सार यह है कि दाक्षिणात्य वाचना के ग्रथन में काश्मीरी एवं मैथिली-बंगाली वाचनाओं का अनुसरण किया गया है । इस तरह से वह संमिश्रित वाचना है ।।

उपसंहार : अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के मूलपाठ में मंचनलक्षी परिवर्तन भी हुए है, तथापि इस समग्र चर्चा से जानकारी मिलती है कि उसमें जो पद्यांश है, उनकी अपेक्षा-कृत अधिक सुरक्षा हुई हैं । [जैसे कि, (1) काश्मीरी वाचना के 213 श्लोकों में से सम्भवतः मौलिक हो ऐसे 195 श्लोकों सुरक्षित है ।, (2) मैथिली वाचना के 225 श्लोकों में से सम्भवतः मौलिक हो ऐसे 196 श्लोक सुरक्षित रहे है ।, (3) बंगाली वाचना के 221 श्लोकों में से सम्भवतः मौलिक हो ऐसे 193 श्लोक सुरक्षित रहे है ।, (4) देवनागरी वाचना के

190 श्लोकों में से सम्भवतः मौलिक हो ऐसे 183 श्लोक सुरक्षित रहे है ।, (5) दाक्षिणात्य वाचना के 193 श्लोकों में से सम्भवतः मौलिक हो ऐसे 181 श्लोक सुरक्षित रहे है ।,] । हाँ, यह बात भी अनतिचिरेण कहनी चाहिए की प्रस्तुत विश्लेषण में विशेष रूप से तो श्लोक-संख्या पर ही ध्यान केन्द्रित किया है ।। परिणामतः उसकी पाँच पाँच वाचनाएँ प्रचलित होने के बावजुद भी, उन सब के बहुसंख्यक श्लोक सुरक्षित रह पाये हैं, और सभी वाचनाओं की लिखित परम्परा में वे संचरित भी होते रहे हैं । यद्यपि उन श्लोकों की शब्दावली में अनेक स्थानों पर पाठभेद किये गये हैं, किन्तु वे भेद आंशिक रूप में ही है । अतः अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के श्लोकसमूह में सांख्यिक दृष्टि से दश प्रतिशत[31] से अधिक प्रक्षिप्त श्लोक नहीं है । जिसके कारण कह सकते हैं कि इस नाटक का काव्यसौन्दर्य बहुत कम मात्रा में क्षतिग्रस्त हुआ है । एवमेव, संक्षेपीकरण के आशय से जिन श्लोकों की कटौती की गई है वे भी सांखिक दृष्टि से 26 श्लोक ही है, जो भी दश प्रतिशत होते हैं ।।

इस सांख्यिक विश्लेषण के उपरांत भी कुछ विन्दुएँ ध्यानास्पद हैः--

1. काश्मीरी वाचना में परापूर्व से चले आ रहे सात प्रक्षिप्त श्लोक विरासत में मिले हैं, तथा संक्षेपीकरण के आशय से निकाले गये दो श्लोक आज उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों में नहीं मिलते है । उनके अलावा तो काश्मीरी वाचना में पद्यात्मक भाग प्रायः सुरक्षित रखा गया है ।।
2. मैथिली वाचना ने सब से अधिक श्लोकों 11का प्रक्षेप किया है । जिसका अनुसरण भी अनुगामी काल में होता रहा है ।
3. देवनागरी वाचना ने सब से अधिक संख्या में श्लोकों की कटौती की है । जिसमें नायक नायिका-के सहज प्रेम का सहचार प्रदर्शित करनेवाले दो दृश्य सदा के लिए अन्धेरे के गर्त में चले गये हैं ।
4. इस नाटक के मूल पाठ को उपर्युक्त दो तरह की हानि पहुँचाई गई है । तथापि मैथिली वाचना ने जो (प्रक्षेप एवं संक्षेप) हानि पहुँचाई है, उसकी अपेक्षा से दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठशोधकों ने जो हानि पहुँचाई है वह अतिगम्भीर प्रकार की है । क्योंकि उन दोनों में हुए संक्षेप से सच्चे प्रेम का चित्र सदाकाल के लिए तिरोहित हो गया है ।।
5. मैथिली वाचना ने जो गान्धर्वेण विवाहेन0 श्लोक का प्रक्षेप किया है वह अकेला ही मूल नाटक के सहज सुन्दर प्रेम के स्वरूप को अपनी गरिमा से नीचे उतार देने में सक्षम है । यह भी एक महती विनष्टि है ।।
6. इतने सारे ढेर परिवर्तनों के वावजुद भी इस नाटक की प्रत्येक वाचना के पाठ में चमत्कृति का अनुभव कराने की क्षमता क्यूं अखण्ड रह पाई है ? उसका प्रत्युत्तर इस नाटक के पद्य श्लोकों का उपर्युक्त विश्लेषण से मिल जाता है ।।

———— 888888 ————

परिशिष्ट – 1

[31]काश्मीरी वाचना को विरासत में मिले 7 प्रक्षिप्त श्लोक + मैथिली वाचना ने प्रक्षिप्त किये 11 श्लोक, + बंगाली ने 3 श्लोकों का प्रक्षेप, + एवं देवनागरी ने दो श्लोक, + तथा दाक्षिणात्य ने एक श्लोक = कुल 24 श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है । सभी वाचनाओं के तमाम श्लोकों की संख्या 232 होती है, उनमें से यदि 24 श्लोक ही प्रक्षिप्त सिद्ध होते है तो दश प्रतिशत का भाग प्रक्षिप्त होता है ।

संकेतपूर्वक का श्लोक-विश्लेषण :–

वाचना	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	TOTAL
काश्मीरी	195	7	0	0	2	0	0	0	11	17	0	232
मैथिली	196	7	11	0	0	0	1	0	11	0	6	232
बंगाली	193	7	3	11	0	0	3	1	11	0	3	232
देवनागरी	183	0	2	6	0	1	21	3	0	4	12	232
दाक्षिणात्य	181	0	1	9	0	1	2	24	0	0	14	232

उपरि निर्दिष्ट तालिका में प्रयुक्त संकेतित अर्थों का विवरण :–

A. जो श्लोक सम्भवतः मूल कविप्रणीत पाठ में रहे होंगे ऐसे श्रद्धेय श्लोक हैं।

B. काश्मीरी वाचना को जो प्रक्षिप्त श्लोक के रूप में विरासत में मिले होंगे ऐसा प्रतीत होता है।

C. उत्तरवर्ती काल में मैथिली वाचना में जो नवीनतम श्लोक दाखिल हुए है, अतः जो प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहें हैं। (यह मैथिली रंगावृत्ति चन्द्रगुप्त-2 के समय में प्रथमवार अभिनीत की गई थी।)

D. मैथिली वाचना में प्रथम बार होने के वाद, इन्हीं श्लोकों का परवर्ती (वंगाली आदि) वाचनाओं में जिनका स्वीकार हुआ है।

E. संक्षेपीकरण के आशय से जो श्लोक बहुत पहले से निकाले गये हैं (विरासत में मिले संक्षेप), अतः ऐसे श्लोक आज काश्मीरी पाण्डुलिपियों में अनुपलब्ध हैं।

F. संक्षेपीकरणके आशय से निकाले गये वे श्लोक, जो काश्मीरी में भी नहीं हैं, उनका अनुसरण परवर्ती काल की वाचनाओं में भी हुआ है।

G. जो श्लोक काश्मीरी वाचना में थे, लेकिन जिनको परवर्ती काल की वाचनाओं में से हटाये गये हैं।

H. मैथिली आदि में से हटाये गयें वे श्लोक, जिनका अनुसरण करके अन्य वाचनाओं में भी हटाये गये है।

I. ऐसे श्लोक, जो केवल बृहत्पाठ वाली (काश्मीरी, मैथिली और वंगाली) वाचनाओं में ही मिलते हैं।

J. अमुक श्लोकों की अनुपलब्धि ।

K. ऐसे अनुपलब्ध श्लोकों का अनुसरण ।

Act	Verses : Collected from all sources	का. - क्रम	मौ-प्र-सं-ना	मै. - क्रम	मौ-प्र-सं-ना	बं. - क्रम	मौ-प्र-सं-ना	देव.- क्रम	मौ-प्र-सं-ना	दाक्षि.-क्रम	मौ-प्र-सं-ना
	प्रथमोऽङ्कः ।।										
1	या सृष्टिः स्रष्टुराद्यावहति विधि0	1	A	1	A	1	A	1	A	1	A
1	आपरितोषाद् विदुषां न साधु0	2	A	2	A	2	A	2	A	2	A
1	सुभगसलिलावगाहाःपाटलिस0	3	A	3	A	3	A	3	A	3	A
1	खणचुम्बिआइँभमरेहिँ उअह0	4	A	4	A	4	A	4	A	4	A
1	तवास्मिगीतरागेण हारिणा0	5	A	5	A	5	A	5	A	5	A
1	कृष्णसारेददच्चक्षुस्त्वयि 0	6	A	6	A	6	A	6	A	6	A
1	ग्रीवाभङ्गाभिरामंमुहु0	7	A	7	A	7	A.	7	A	7	A
1	मुक्तेषुरश्मिषु निरायतपूर्व0	8	A	8	A	8	A	8	A	8	A
1	यदालोकेसूक्ष्मं व्रजति सहसा0	9	A	9	A	9	A	9	A	9	A
1	न खलु नखलु बाणः संनिपात्यो0	0	J	10	C	10	D	0	K	10	D
1	तत्साधुकृतसंधानं प्रतिसंहर0	10	A	11	A	11	A	10	A	11	A
1	जन्म यस्यपुरोर्वंशे युक्तरूपं0	0	J	0	K	0	K	11	C	12	D
1	धन्यास्तपोधनानांप्रतिहतविघ्ना 0	11	A	12	A	12	A	12	A	13	A
1	नीवाराःशुककोटरार्भकमुख0	12	A	13	A	13	A	13	A	14	A
1	कुल्याम्भोभिःपवनचपलैः 0	13	A	14	A	14	A	0	G	0	H
1	शान्तमिदमाश्रमपदंस्फुरति 0	14	A	15	A	15	A	14	A	15	A
1	शुद्धान्तदुर्लभमिदंवपुराश्रम0	15	A	16	A	16	A	15	A	16	A
1	इदंकिलाव्याजमनोहरं वपु0	16	A	17	A	17	A	16	A	17	A
1	इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना0	0	E	18	A	18	A	0	K	0	K
1	सरसिजमनुविद्धंशैवलेनापि0	17	A	19	A	19	A	17	A	18	A
1	कठिनमपिमृगाक्ष्या वल्कलं0	0	J	0	K	चन्द्र	C	0	K	0	K

1	अधरःकिसलयरागः कोमल0	18	A	20	A	20	A	18	A	19	A
1	असंशयंक्षत्रपरिग्रहक्षमा0	19	A	21	A	21	A	19	A	20	A
1	यतो यतःषट्चरणो भिवर्तते0	0	E	22	A	22	A	0	F	0	F
1	चलापाङ्गांदृष्टिं स्पृशसि0	20	A	23	A	23	A	20	A	21	A
1	कः पौरवेवसुमतीं शासति0	21	A	24	A	24	A	21	A	22	A
1	मानुषीभ्यःकथं नु स्यादस्य0	22	A	25	A	25	A	22	A	23	A
1	वैखानसंकिमनया व्रतमाप्र0	23	A	26	A	26	A	23	A	24	A
1	भव हृदयसाभिलाषं संप्रति0	24	A	27	A	27	A	24	A	25	A
1	अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा0	25	A	28	A	28	A	25	A	26	A
1	स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ0	26	A	29	A	29	A	26	A	27	A
1	वाचं नमिश्रयति यद्यपि0	27	A	30	A	30	A	27	A	28	A
1	तुरगखुरहतस्तथाहि रेणुर्विटप0	28	A	31	A	31	A	28	A	29	A
1	तीव्राघातादभिमुखतरुस्कन्ध0	29	A	32	A	32	A	29	A	30	A
1	गच्छतिपुरः शरीरं धावति0	30	A	33	A	33	A	30	A	31	A

	द्वितीयोऽङ्कः ।।										
2	कामं प्रिया न सुलभामनस्तु0	1	A	1	A	1	A	1	A	1	A
2	स्निग्धंवीक्षितमन्यतो पि नयने	2	A	2	A	2	A	2	A	2	A
2	ननमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये0	3	A	3	A	3	A	3	A	3	A
2	अनवरतधनुर्ज्यास्फालन0	4	A	4	A	4	A	4	A	4	A
2	मेदश्छेदकृशोदरं लघुभवत्यु0	5	A	5	A	5	A	5	A	5	A
2	गाहन्तां महिषानिपानसलिलं0	6	A	6	A	6	A	6	A	6	A
2	शमप्रधानेषु तपोवनेषुगूढं0	7	A	7	A	7	A	7	A	7	A
2	ललितोप्सरोभवं किलमुनेरप	8	A	9	A	9	A	8	A	8	A
2	निराकृतनिमेषाभिर्नेत्रपंक्ति0	9	A	8	A	8	A	0	G	0	H
2	चित्ते निवेश्यपरिकल्पित0	10	A	10	A	10	A	9	A	9	A
2	अनाघ्रातं पुष्पंकिसलयमलूनं0	11	A	11	A	11	A	10	A	10	A
2	अभिमुखे मयिसंवृतमीक्षितं0	12	A	12	A	12	A	11	A	11	A
2	दर्भाङ्कुरेण चरणःक्षत0	13	A	13	A	13	A	12	A	12	A
2	यदुत्तिष्ठतिवर्णेभ्यो नृपाणां0	14	A	14	A	14	A	13	A	13	A
2	अध्याक्रान्तावसतिरमुना0	15	A	15	A	15	A	14	A	14	A
2	नैतच्चित्रं यदयमुदधि0	16	A	16	A	16	A	15	A	15	A

2	अनुकारिणि पूर्वेषांयुक्ति0	17	A	17	A	17	A	16	A	16	A
2	कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद्0	18	A	18	A	18	A	17	A	17	A
2	क्व वयं क्वपरोक्षमन्मथो मृग0	19	A	19	A	19	A	18	A	18	A

	तृतीयोऽङ्कः ।।										
3	का कथावाणसंधाने ज्या0	1	A	1	A	1	A	1	A	1	A
3	जाने तपसोवीर्यं सा बाला0	2	A	2	A	2	A	2	A	2	A
3	अद्यापिनूनं हरकोपवह्नि0	3	B	3	B	3	B	0	J	0	K
3	तवकुसुमशरत्वं शीतरश्मि0	4	A	4	A	4	A	3	A	3	A
3	अनिशमपिमकरकेतुर्मनसो0	0	J	5	C	5	D	0	K	0	K
3	वृथैवसंकल्पशतैरजस्रमनङ्ग0	0	J	6	C	6	D	0	K	0	K
3	संमीलन्तिन तावद् बन्धनको	0	J	7	C	7	D	0	K	0	K
3	शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही	5	A	8	A	8	A	4	A	4	A
3	अभ्युन्नतापुरस्तादवगाढा0	6	A	9	A	9	A	5	A	5	A
3	स्तनन्यस्तोशीरंप्रशिथिल0	7	A	10	A	10	A	6	A	6	A
3	शशिकरविशदान्यास्तथा0	0	J	0	K	11	C	0	K	0	K
3	क्षामक्षामकपोलमानन0	8	A	11	A	12	A	7	A	7	A
3	पृष्टाजनेन समदुःखसुखेन0	9	A	12	A	13	A	8	A	8	A
3	स्मर एवतापहेतुर्निवापयिता0	10	A	13	A	14	A	9	A	9	A
3	अशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्ण0	11	A	14	A	15	A	10	A	10	A
3	अयं स तेतिष्ठति संगमोत्सुको0	12	A	15	A	16	A	11	A	11	A
3	अयं सयस्मात् प्रणयावधीरणा	0	J	16	C	17	D	0	K	0	K
3	उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः0	13	A	17	A	18	A	12	A	12	A
3	तुज्झ णआणे हिअअं मम0	14	A	18	A	19	A	13	A	13	A
3	तपतितनुगात्रि मदनस्त्वाम्0	15	A	19	A	20	A	14	A	14	A
3	संदष्टकुसुमशयनान्याशु0	16	A	20	A	21	A	15	A	15	A
3	इदमनन्यपरायणमन्यथा0	17	A	21	A	22	A	16	A	16	A
3	परिग्रहबहुत्वेपि द्वे प्रतिष्ठे0	18	A	22	A	23	A	17	A	17	A
3	अपराधमिमंततः सहिष्ये यदि	19	B	23	B	24	B	0	J	0	K
3	किं शीकरैःक्लमविमर्दिभि0	20	A	24	A	25	A	18	A	18	A
3	उत्सृज्यकुसुमशयनं नलिनी0	21	A	25	A	26	A	19	A	19	A
3	अप्यौत्सुक्येमहति दयित0	22	B	26	B	27	B	0	J	0	K

3	गान्धर्वेणविवाहेन बह्व्यो थ0	0	J	27	C	28	D	20	D	20	D
3	त्वंदूरमपि गच्छन्ती हृदयं0	23	I	28	I	29	I	0	G	0	H
3	अनिर्दयोपभोग्यस्यरूपस्य0	24	I	29	I	30	I	0	G	0	H
3	मणिबन्धनगलितमिदंसंक्रान्तो	25	I	30	I	31	I	0	G	0	H
3	अनेनलीलाभरणेन ते प्रिये0	26	I	31	I	32	I	0	G	0	H
3	पिपासाक्षामकण्ठेनयाचितं0	27	I	32	I	33	I	0	G	0	H
3	हरकोपाग्निदग्धस्यदैवेनामृत0	28	I	33	I	34	I	0	G	0	H
3	अयं स तेश्यामलतामनोहरं0	29	I	34	I	35	I	0	G	0	H
3	चारुणास्फुरितेनायमपरिक्षत0	30	I	35	I	36	I	0	G	0	H
3	इदमप्युपकृतिपक्षेसुरभि मुखं0	31	I	36	I	37	I	0	G	0	H
3	अपरिक्षतकोमलस्ययावत्कुसुम	0	J	0	K	0	K	21	C	21	D
3	मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं0	32	A	37	A	38	A	22	A	22	A
3	तस्याःपुष्पमयी शरीरलुलिता	33	A	38	A	39	A	23	A	23	A
3	रहःप्रत्यासत्तिंयदि सुवदना0	34	B	39	B	40	B	0	G	0	H
3	सायंतनेसवनकर्मणि संप्रवृत्ते0	35	A	40	A	41	A	24	A	24	A

	चतुर्थोऽङ्कः ।।										
4	विचिन्तयन्तीयमनन्यमानसा0	1	A	1	A	1	A	1	A	1	A
4	कर्कन्धूनामुपरितुहिनं रञ्जय0	2	I	2	I	4	I	0	G	0	H
4	पादन्यासंक्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि0	3	I	3	I	5	I	0	G	0	H
4	यात्येकतोस्तशिखरं पतिरोष	4	B	4	B	2	B	2	D	2	D
4	अन्तर्हितेशशिनि सैव कुमुद्वती	5	B	5	B	3	B	3	D	3	D
4	दुःषन्तेनाहितंतेजो दधानां0	6	A	6	A	6	A	4	A	4	A
4	क्षौमंकेनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा0	7	A	7	A	7	A	5	A	5	A
4	यास्यत्यद्यशकुन्तलेति हृदयं0	8	A	8	A	8	A	6	A	6	A
4	ययातेरिवशर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता	9	A	9	A	9	A	7	A	7	A
4	अमी वेदींपरितः क्लृप्तधिष्ण्या	10	A	10	A	10	A	8	A	8	A
4	पातुं नप्रथमं व्यवस्यति जलं0	11	A	11	A	11	A	9	A	9	A
4	अनुमतगमनाशकुन्तला सा तरु	13	A	12	A	12	A	10	A	10	A
4	रम्यान्तरःकमलिनीहरितैः सरो	12	A	13	A	13	A	11	A	11	A
4	उल्ललइदब्भकवलं मई0	14	A	14	A	14	A	12	A	12	A
4	संकल्पितंप्रथममेव मया0	15	A	15	A	15	A	13	A	13	A

4	यस्य त्वयाव्रणविरोहणम्0	16	A	16	A	16	A	14	A	14	A
4	उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं0	17	A	17	A	17	A	15	A	15	A
4	पुडइणिवत्तन्तरिअंवाहरिओ0	18	A	18	A	18	A	0	G	0	H
4	अज्ज पिएणविणा जं गमेइ	19	A	19	A	0	G	16	A	16	A
4	अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमध	20	A	20	A	19	A	17	A	17	A
4	शुश्रूषस्वगुरून् कुरु प्रियसखी0	21	A	21	A	20	A	18	A	18	A
4	अभिजनवतोभर्तुः श्लाघ्ये0	22	A	22	A	21	A	19	A	19	A
4	यदाशरीरस्य शरीरिणश्च पृथ	23	A	23	A	0	G	0	H	0	H
4	भूत्वाचिराय सदिगन्तमही0	24	A	24	A	22	A	20	A	20	A
4	अपयास्यतिमे शोकः कथं0	25	A	25	A	23	A	21	A	21	A
4	अर्थो हिकन्या परकीय एव0	26	A	26	A	24	A	22	A	22	A

	पञ्चमोऽङ्कः ।।										
5	आचारइत्यधिकृतेन मया0	1	A	1	A	1	A	3	A	3	A
5	क्षणात्प्रबोधमायातिलंघ्यते0	2	A	2	A	2	A	0	G	0	H
5	प्रजाःप्रजाः स्वा इव तन्त्रयि	4	A	3	A	3	A	5	A	5	A
5	भानुःसकृद्युक्ततुरंग एव0	3	A	4	A	4	A	4	A	4	A
5	औत्सुक्यमात्रमवसादयति0	7	A	5	A	5	A	6	A	6	A
5	स्वसुखनिरभिलाषःखिद्यसे0	8	A	6	A	6	A	7	A	7	A
5	नियमयसिविमार्गप्रस्थिता0	9	A	7	A	7	A	8	A	8	A
5	अहिणवमहुलोहभाविओ0	5	A	8	A	8	A	1	A	1	A
5	रम्याणिवीक्ष्य मधुरांश्च0	6	A	9	A	9	A	2	A	2	A
5	किं तावद्व्रतिनामुपोढतपसां0	10	A	10	A	10	A	9	A	9	A
5	महाभागःकामं नरपतिरभिन्न0	11	A	11	A	11	A	10	A	10	A
5	अभ्यक्तमिवस्नातः शुचिर0	12	A	12	A	12	A	11	A	11	A
5	भवन्तिनम्रास्तरवः फलोद्गमै0	13	A	13	A	13	A	12	A	12	A
5	केयमवगुण्ठनवतीनातिपरि0	14	A	14	A	14	A	13	A	13	A
5	कुतोधर्मक्रियाविघ्नः सतां0	15	A	15	A	15	A	14	A	14	A
5	त्वमर्हतांप्राग्रहरः स्मृतो0	16	A	16	A	16	A	15	A	15	A
5	णावेक्खिओगुरुअणो इमीअ0	17	A	17	A	17	A	16	A	16	A
5	सतीमपिज्ञातिकुलैकसंश्रयां0	18	A	18	A	18	A	17	A	17	A
5	किंकृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति0	19	A	19	A	अस्ति	A	18	A	18	A
5	इदमुपनतमेवंरूपमक्लिष्ट0	20	A	20	A	19	A	19	A	19	A

5	कृतावमर्शामनुमन्यमानः0	21	A	21	A	20	A	20	A	20	A
5	व्यपदेशमाविलयितुंसमीहसे0	22	A	22	A	21	A	21	A	21	A
5	स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्0	23	A	23	A	22	A	22	A	22	A
5	नतिर्यगवलोकितं भवति चक्षु0	24	A	24	A	23	A	0	G	0	H
5	मय्येवविस्मरणदारुणचित्तवृ	0	J	25	C	24	D	23	D	23	D
5	तुम्हेय्येव पमाणं जाणध धम्म	25	B	26	B	चन्द्र.	B	0	J	0	K
5	अतःसमीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्0	26	A	27	A	25	A	24	A	24	A
5	आ जन्मनःशाठ्यमशिक्षितो0	27	A	28	A	26	A	25	A	25	A
5	तदेषा भवतःपत्नी त्यज वैनं0	28	A	29	A	27	A	26	A	26	A
5	यदि यथावदति क्षितिपस्तथा0	29	A	30	A	28	A	27	A	27	A
5	कुमुदान्येवशशाङ्कः सविता0	30	A	31	A	29	A	28	A	28	A
5	मूढःस्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्ये	31	A	32	A	30	A	29	A	29	A
5	सानिन्दन्ती स्वानि भाग्यानि0	32	A	33	A	31	A	30	A	30	A
5	कामंप्रत्यादिष्टां स्मरामि न0	33	A	34	A	32	A	31	A	31	A

	षष्ठोऽङ्कः ।।										
6	शहये किलये विणिन्दिदे0	1	A	1	A	1	A	1	A	1	A
6	आअम्बहरिअवेण्टंऊससिअं वि	2	A	2	A	2	A	2	A	0	G
6	चूतंहर्षितपिककं जीवितसदृशं	0	J	0	K	0	K	0	K	2	C
6	अरिहसि मेचूअङ्कुर दिण्णो0	3	A	3	A	3	A	3	A	3	A
6	चूतानांचिरनिर्गतापि कलिका	4	A	4	A	4	A	4	A	4	A
6	रम्यंद्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिः	5	A	5	A	5	A	5	A	5	A
6	प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधि0	6	A	6	A	6	A	6	A	6	A
6	प्रथमंसाराङ्गाक्ष्या प्रियया 0	7	A	7	A	7	A	7	A	7	A
6	मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना0	0	J	8	C	8	D	8	D	8	D
6	उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया0	8	A	9	A	9	A	0	G	0	H
6	इतःप्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं	9	A	10	A	10	A	9	A	9	A
6	स्वप्नो नुमाया नु मतिभ्रमो0	10	A	11	A	11	A	10	A	10	A
6	तवसुचरितमङ्गुरीय नूनं0	11	A	12	A	12	A	11	A	11	A
6	एकैकमत्रदिवसे दिवसे मदीयं0	12	A	13	A	13	A	12	A	12	A
6	कथं नु तंकोमलबन्धुरा0	13	A	14	A	14	A	13	A	13	A
6	दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र0	0	J	15	C	15	D	0	K	0	K

6	अस्यास्तुंगमिवस्तनद्वयमिदं0	0	J	0	K	चन्द्र.	C	0	K	0	K
6	यद्यत्साधुन चित्रे स्मिन्0	0	J	16	C	16	D	14	D	14	D
6	साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय0	14	A	17	A	17	A	16	A	0	G
6	स्विन्नांगुलीनिवेशाद्रेखा0	15	A	18	A	18	A	15	A	15	A
6	कार्यासैकतलीनहंसमिथुना0	16	A	19	A	19	A	17	A	17	A
6	कृतं नकर्णार्पितबन्धनं0	17	A	20	A	20	A	18	A	18	A
6	एषाकुसुमंनिषण्णा तृषिता0	18	A	21	A	21	A	19	A	19	A
6	अक्लिष्टबालतरुपल्लव0	19	A	22	A	22	A	20	A	20	A
6	दर्शनसुखमनुभवतःसाक्षादिव0	20	A	23	A	23	A	21	A	21	A
6	प्रजागरात्खिलीभूत0	21	A	24	A	24	A	22	A	22	A
6	येन येनवियुज्यन्ते प्रजाः0	22	A	25	A	25	A	23	A	23	A
6	संरोपितेप्यात्मनि धर्मपत्नी0	23	A	26	A	26	A	24	A	24	A
6	अस्मात्परं बत यथास्मृति0	24	A	27	A	27	A	25	A	25	A
6	आमूलशुद्धसंततिकुलमेतत्0	25	A	28	A	28	A	0	G	0	H
6	प्रागेवजरसा कम्पः सविशेषेण	26	A	29	A	29	A	0	G	0	H
6	तस्याग्रभागाद्गृहनीलकण्ठै0	27	A	30	A	30	A	0	G	0	H
6	अहन्यहन्यात्मनएव ताव0	28	A	31	A	31	A	26	A	26	A
6	एषत्वामभिनवकण्ठशोणिता	29	A	32	A	32	A	27	A	27	A
6	योहनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं0	30	A	33	A	33	A	28	A	28	A
6	कृताःशरव्यं हरिणा तवासुरा0	31	A	34	A	34	A	29	A	29	A
6	सख्युस्तेस किल शतक्रतोरवध्य	32	A	35	A	35	A	30	A	30	A
6	ज्वलतिचलितेन्धनो ग्निर्विप्रकृ	33	A	36	A	36	A	31	A	31	A
6	त्वन्मतिःकेवला तावत् प्रतिपा	34	A	37	A	37	A	32	A	32	A

	सप्तमोऽङ्कः ।।										
7	अविअगमणं कंचण अण्णंच	1	A	0	G	0	H	0	H	0	H
7	उपकृत्यहरेस्तस्या भवाल्लंघु0	2	A	1	A	1	A	1	A	1	A
7	अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं0	3	A	2	A	2	A	2	A	2	A
7	सुखपरस्यहरेरुभयैः कृतं0	4	A	3	A	3	A	3	A	3	A
7	सिध्यन्तिकर्मसु महत्त्वपि0	5	A	4	A	4	A	4	A	4	A
7	विच्छित्तिशेषैःसुरसुन्दरीणां	6	A	5	A	5	A	5	A	5	A
7	त्रिस्रोतसंवहति यो गगनप्रति	7	A	6	A	6	A	6	A	6	A

7	अयमगविवरेभ्यश्चातकैर्नि0	8	A	7	A	7	A	7	A	7	A
7	शैलानामवरोहतीवशिखराद्0	9	A	8	A	8	A	8	A	8	A
7	स्वायंभुवान्मरीचेर्यःप्रबभूव0	10	A	9	A	9	A	9	A	9	A
7	उपोढशब्दान रथाङ्गनेमयः0	11	A	10	A	10	A	10	A	10	A
7	वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरग्0	12	A	11	A	11	A	11	A	11	A
7	प्राणानामनिलेनवृत्तिरुचिता0	13	A	12	A	12	A	12	A	12	A
7	मनोरथायनाशंसे किं बाहो0	14	A	13	A	13	A	13	A	13	A
7	अर्धपीतस्तनंमातुरामर्दक्लिष्ट0	15	A	14	A	14	A	14	A	14	A
7	महतस्तेजसोबीजं बालो यं0	16	A	15	A	15	A	15	A	15	A
7	प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो0	17	A	16	A	16	A	16	A	16	A
7	आलक्ष्यदन्तमुकुलान0	18	A	17	A	17	A	17	A	17	A
7	एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना0	19	A	18	A	18	A	18	A	18	A
7	अनेनकस्यापि कुलांकुरेण0	20	A	19	A	19	A	19	A	19	A
7	भवनेषुसुधासितेषु पूर्वं क्षिति0	21	A	20	A	20	A	20	A	20	A
7	वसनेपरिधूसरे वसाना नियम	22	A	21	A	21	A	21	A	21	A
7	स्मृतिभिन्नमोहतमसोदिष्ट्या0	23	A	22	A	22	A	22	A	22	A
7	बाष्पेनप्रतिषिद्धे पि जयशब्दे0	24	A	23	A	23	A	23	A	23	A
7	सुतनुहृदयात् प्रत्यादेशव्यलीक	25	A	24	A	24	A	24	A	24	A
7	मोहान्मयासुतनु पूर्व0	26	A	25	A	25	A	25	A	25	A
7	पुत्रस्यते रणशिरस्ययम्0	27	A	26	A	26	A	26	A	26	A
7	प्राहुर्द्वादशधास्थितस्य मुनयो0	28	A	27	A	27	A	27	A	27	A
7	आखण्डलसमोभर्ता जयन्त0	29	A	28	A	28	A	28	A	28	A
7	दिष्ट्याशकुन्तला साध्वी0	30	A	29	A	29	A	29	A	29	A
7	उदेतिपूर्वं कुसुमं ततः फलं0	31	A	30	A	30	A	30	A	30	A
7	यथा गजेसाधुसमक्षरूपे0	32	A	31	A	31	A	31	A	31	A
7	शापादसिप्रतिहता स्मृतिलोप0	33	A	32	A	32	A	32	A	32	A
7	रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना0	34	A	33	A	33	A	33	A	33	A
7	तव भवतुबिडौजाः प्राज्यवृष्टि	0	J	34	C	34	D	0	K	34	K
7	क्रतुभिरुचितभागांस्त्वंसुरान्0	35	A	35	A	0	G	0	H	0	H
7	प्रवर्ततांप्रकृतिहिताय पार्थिवः	36	A	36	A	35	A	34	A	35	A

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूचि

(1) अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकासमेतम्), सं. नारायण राम । प्रकाशकः राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006 । (इसमें देवनागरी वाचना का पाठ है)

(2) अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (काटयवेमकृत-कुमारगिरिराज़ीया-टीकया सहितम्), प्रका. आन्ध्रप्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद, 1982 (इसमें दाक्षिणात्य वाचना का पाठ है)

(3) अभिज्ञानशकुन्तलम् । सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रीज, द्वितीय संस्करण, 1922, (इसमें बंगाली वाचना का पाठ है)

(4) अभिज्ञानशकुन्तलम् । सं. रमानाथ झा । प्रका. मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1957, (इसमें मैथिली वाचना का पाठ है)

(5) अभिज्ञानशकुन्तलम् । सं. प्रोफे. पी. एन. पाटणकर, शिरालकर एन्ड कुं. पुना, द्वितीय संस्करण, 1902 (इसमें शुद्धतर देवनागरी वाचना का पाठ पर्स्तुत करने का दावा किया गया है, किन्तु उसमें अनेक स्थानों पर काश्मीरी वाचना के पाठों को संमिश्रित किये हैं ।)

(6) अभिज्ञानशकुन्तलम् । सं. डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता, 1980 (इसमें बंगाली वाचना का पाठ है)

(7) अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (अभिराम-विरचित-दिङ्मात्रदर्शनव्याख्यायया संभूषितम्), प्रका. श्रीवाणी विलास मुद्रायन्त्रालयः, श्रीरंगम्, 1917

(8) अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (घनश्यामकृत-संजीवनाख्यटिप्पणसमेतम्), सं. पूनम पंकज रावळ, प्रका. सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदावाद, 1999

(9) अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (श्रीनिवासाचार्यकृतटीकया सहितम्), निर्णय सागर प्रेस, 1966

(10) अभिज्ञानशकुन्तला । (काश्मीरी वाचना के पाठ का समीक्षित सम्पादन), सं. वसन्तकुमार भट्ट, (मुद्रणाधीन – 2015)

(11) कालिदास ग्रन्थावली । सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी, प्रका. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1986

(12) नाट्यम्, सम्पादक : श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, अंक –76, दिसेम्बर, 2014

—— 88888 ——